तउ किउ मुरगी मारै ?



भाई जोगिन्द्र सिंह तलवाड़ा

१ओं सतिगुरप्रसादि ।।

जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ

तउ किउ मुरगी मारै ?

भाई जोगिन्द्र सिंह तलवाड़ा

गुरमति साहित्य चैरीटेबल ट्रस्ट

रजि: दफ़्तर — बाज़ार माई सेवां, अमृतसर

इस पुस्तक का पंजाबी और अंग्रेज़ी अनुवाद भी उपलब्ध है।

हिन्दी संस्करण

पहली बार फ़रवरी २००३

मूल्य : १२-००

वित्रक :

सिंघ ब्रदर्ज़

•

बाज़ार माई सेवां, अमृतसर -143 006

•

S.C.O. 98, सिटी सैंटर, अमृतसर-143 001

E-mail : singhbro@vsnl.com

Website : www.singhbrothers.com

प्रकाशक :

गुरमति साहित्य चैरीटेबल ट्रस्ट

बाज़ार माई सेवां, अमृतसर

मुद्रक :

प्रिंटवैल्ल, 146, इंडस्ट्रीयल फ़ोकल पुआइंट, अमृतसर

परिचय

माँस खाने के संबंध में सारे संसार के समूह धर्मों के सदस्यों के विचारों में आपसी मतभेद हैं। कुछ माँस खाने के पक्ष में हैं और कुछ इसके विपक्ष में हैं। साधारण मनुष्य माँस खाने या न खाने के लिए स्वयं की दलील से काम लेते हैं। सिक्ख धर्म में भी दलील या मंतक की कदर-कीमत तो आवश्य है, पर अगर यह दलील 'गुरमति' पर आधारित हो तो। किसी भी समस्या के समाधान के लिए हमारे पास पूर्ण भरोसे योग्य रचना गुरुवाणी है, जो गुरमति को सही रूप में निरूपण करती है। भिन्न भिन्न समस्यायों के लिए इतिहास से भी सेध मिलती है। ख़ालसा रीति संबंधी रहितनामे विषेश रूप में मार्ग-दर्शन के श्रोत हैं, पर कठिनाई यह है कि उपलब्ध ऐतिहासिक ग्रंथों तथा रहितनामों में परस्पर विरोधी विचार बहुत हैं। इसलिए जहां किसी विषय पर गुरुवाणी, इतिहास तथा रहितनामे, इन तीनों में आपसी विरोध पाया जाता हो तो निश्चय ही वहां गुरुवाणी में दिये गए आदेश को ही सही माना जा सकता है। माँस खाने का मसला भी इसी आधार पर ही परखा जाना उचित है।

कुछ वर्ष हुए, कलकत्ता से छपने वाली अंग्रेज़ी पत्रिका *सिक्ख रीवीऊ* में माँस संबंधी चर्चा छिड़ने पर भाई जोगिन्द्र सिंह जी तलवाड़ा के दो लेख अगस्त १९६२ तथा सितम्बर १९६३ के अंक में छपे। भाई साहिब ने इन दोनों लेखों को पंजाबी रूप देते हुए कुछ और विचार सम्मिलित कर इस विषय को किताबचे का रूप दे दिया। अब हिन्दी पाठकों की मांग पर इसी किताबचे को हिन्दी में छापा जा रहा है।

इस किताबचे के ६ पंजाबी संस्करण *सूरा* मासिक पत्रिका की ओर से छपवाए गए, जिनकी पाठकों ने भरपूर प्रशंसा की। इसकी लगातार बढ़ती मांग को देखते हुए अब इसकी प्रकाशना ट्रस्ट द्वारा की जा रही है।

ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित गुरमति साहित्य केवल लागत मूल्य पर पाठक-जनों तक पहुँचाया जाता है। यह कार्य गुरसिक्ख प्रेमियों के सहयोग से चल रहा है। सतिगुरु जी पास विनय है कि अपनी कृपा द्वारा आप ही यह सेवा लेते रहें।

कनवीनर

गुरमति साहित्य चैरीटेबल ट्रस्ट

नए संस्करण की प्रवेशिका

१. यह संस्करण पंजाबी किताबचे *तउ किउ मुरगी मारै* का हिन्दी अनुवाद है, जो मूल रूप में क्रमानुसार अप्रैल १९९५, जनवरी १९९८ और जून २००१ में प्रकाशित हुआ है। इस किताबचे की विदेशी पाठकों द्वारा बढ़ती हुई मांग के कारण इसका अंग्रेज़ी रूपांतर भी बाज़ार में आ चुका है।

२. मेरा ध्यान आदरणीय भाई सरदार गुरबख़्श सिंह जी काला अफ़गाना द्वारा प्रकाशित पुस्तक *मासु मासु करि मूरखु झगड़े* की ओर दिलाया गया है। मैंने इस पुस्तक को एकाग्रता से पढ़ा है। मुझे इसमें कोई नई बात दिखाई नहीं दी। पुरानी घिसी पिटी दलीलें ही दुहराई गई हैं जिनके संबंध में संक्षिप्त परन्तु भाव-पूरत विचार इस पुस्तिका के प्रारंभ में पहले ही की गई है। विशेष शंकाएं फिर स्पष्ट की जाती हैं।

३. भाई काला अफ़ग़ाना जी की उपरोक्त पुस्तक की विशेषता केवल यह है कि इसमें उन्होंने भाई साहिब भाई रणधीर सिंह जी के विरुद्ध मन भरकर अपनी घृणा निकाली है। सच्चाई तो यह है कि जब कोई गुरमति अनुसार माँस खाने के विरुद्ध प्रचार करता है तो माँस के चसकालू भाईयों के अन्दर व्याकुलता पैदा हो जाती है। कारण यह कि वह माँस खाने के संबंध में हर हालत में तथा हर कीमत पर पूरी आज़ादी चाहते हैं। माँस खाने से संबंधित गुरुवाणी के शब्दों के अर्थ भी उनको वही स्वीकृत हैं, जिनसे उनको माँस खाने की पूर्ण आज़ादी मिलती हो।

४. भाई साहिब भाई रणधीर सिंह जी ने अपना सारा जीवन प्रभु-नाम तथा गुरुवाणी के निरन्तर अभ्यास में बिताया था। उन्होंने गुरुवाणी को जीवन-आधार बनाया तथा गुरुवाणी के रहस्य को आत्मिक तल तक जाना और भोगा। गुरुवाणी का अन्तरीव भावार्थ उनकी नस नस में बसा हुआ था। गुरुवाणी के अर्थ समझने के लिए उन्हें किसी टीकाकार की आवश्यक्ता नहीं थी। गुरुवाणी से भीतरी संबंध स्थापित हो जाने के फलस्वरूप उनको यह अनुभव हुआ कि माँस खाने के लिए प्रत्येक को पशु-पक्षियों की हत्या करनी पड़ती है जो निरसंदेह एक हिंसक कर्म है! हत्या है!! ज़ोर-ज़ुल्म है!!!

इसलिए उन्होंने इस बात की चिन्ता न करते हुए कि कोई उनको बुरा कहेगा या भला, गुरुवाणी की सच्चाई को पूरी दृढ़ता तथा निर्भयता से सिक्ख-जगत तक पहुँचाने का साहस किया।

५. यदि देश-प्रदेश के अनंत गुरसिक्ख गुरुवाणी की सच्चाई को पढ़-सुनकर, जीवों पर ज़ोर-जुल्म कर, हत्यारे बनने से बच गए हैं तो इसमें भाई साहिब की नहीं बल्कि गुरुवाणी की ही प्रशंसा है। भाई साहिब जी ने तो गुरु-आसरे केवल गुरुवाणी के सत्य को प्रकट करने की सेवा ही की, जो सतिगुरु जी की कृपा से सफल हुई तथा लाखों ही गुरसिक्ख "गलवढ हतिआ कमाहि" के पाप-कर्म से बच गए, बच रहे हैं तथा बचते रहेंगे। यदि कोई भाई उत्तेजित होकर भाई साहिब के विरुद्ध मंद-भावना प्रकट करता है तो इससे उनके निर्मल व्यक्तित्व को कोई हानि नहीं पहुंचती। भला, चांद पर थूकने से चांद कभी मैला होता है ? हरगिज़ नहीं। गुरुवाणी का रसीया हर एक गुरसिक्ख उनके विचारों को गुरुवाणी की रोशनी में जांच सकता है।

६. भाई साहिब ने देश स्वतन्त्रता तथा धर्मार्थ उम्र-कैद भोगी तथा उस समय जेल की दिल दहलाने वाली यातनाएं सहन करते हुए अपने सिक्खी विश्वास को पूर्ण दृढ़ता से निभाया तथा इस प्रकार अमली तौर पर सबूत पेश किया कि ख़ालसई वीरता माँस खाने के चसके अधीन मासूम पशु-पक्षियों पर शस्त्र-प्रहार करने से नहीं बल्कि गुरु-हुक्मों के भय में विचरते हुए आत्म-बलिदान देने की भावना के अधीन उत्पन्न होती है।

विवादित समस्या

वास्तव में विवादित समस्या माँस-साग का निर्णय नहीं, बल्कि मुख्य मुद्धा माँस प्राप्त करने हेतु जीवों पर किये जाने वाले ज़ोर-जुल्म का है, जिस संबंधी गुरुवाणी का निर्णय पूर्ण स्पष्ट है। वैसे, कोई गुरुवाणी के अर्थों की हेरा-फेरी कर ज़ोर-जुल्म के दोष से बचना चाहे तो उसकी इच्छा; परन्तु बच सकना संभव नहीं।

"असंख गलवढ हतिआ कमाहि" के अर्थों में संदेह क़ी क्या संभावना है ? अर्थ स्पष्ट हैं, (किसी भी स्वै-भावी प्रयोजन अथवा हवस के अधीन) किसी भी जीव (मनुष्य, पशु या पक्षी) का गला काटने वाला हत्यारा है। रसना के चसके अधीन मासूम जीवों के गले काटने वालों से सीधा प्रश्न है :

मास खानि गलि छुरी दे हालु तिनाड़ा कउणु अलोआ ।।

(भाई गुरदास जी, वार ३७, पउड़ी २१)

मासु खानि गल हढि कै हालु तिनाड़ा कउणु होवसी ।।

(भाई गुरदास जी, वार २५, पउड़ी १७)

[जो मनुष्य मासूम पशु-पक्षियों का गला काटकर माँस-आहार करते हैं, उनका (सच्ची दरगाह में) क्या हाल होगा ?]

सीधा प्रश्न है

जीअ बधहु सु धरमु करि थापहु अधरमु कहहु कत भाई ।।
आपस कउ मुनिवर करि थापहु का कउ कहहु कसाई ।।

(मारू कबीर, पन्ना ११०३)

[रसना के चसके अधीन जीव-हत्या करते हो तथा इसको धर्म (ख़ालसा-रहित) निर्धारित करते हो तो अधर्म (कु-रहित,) फिर किसको कहोगे ?
(जीव-हत्या का निंदनीय कर्म करने के पश्चात) अपने आपको उच्च श्रेणी के पुरुष (संत-ख़ालसा) मानते हो तो फिर कसाई किसको कहोगे ?]

स्पष्ट प्रश्न है

जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु ।।
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु ।।

(वार माझ म: १, पन्ना १४०)

[यदि (शरीर पर पहने) कपड़े पर ख़ून की छींट पड़ जाये तो पुशाक अपवित्र समझी जाती है, तो फिर जो मनुष्य (मासूम जानवरों को मारकर माँस के रूप में उनका) ख़ून पीते हैं, उनका चित्त कैसे पवित्र रह सकता है ?]

नोट : उपरोक्त अर्थ गुरुवाणी के व्याकर्णक नियमों तथा श्लोक के प्रसंग अनुसार हैं। प्रसंगक अर्थ हैं :

रत कपड़े को लगे, कपड़ा पलीत।
यदि रत चित्त को लगे, चित्त पलीत।

उपरोक्त श्लोक में 'माणसा' शब्द का उच्चारण 'बिन्दी रहित' है तथा व्याकरण अनुसार यह कर्ता कारक बहु-वचन का 'साधारण रूप' है।

माँसाहारी भाई इस शब्द (माणसा) का उच्चारण नासकी भाव 'माणसां' करते हैं तथा दलील देते हैं कि इस श्लोक में मानव जाति का ख़ून पीने अथवा उन पर ज़ुल्म करने वालों का निषेध किया गया है।

कोई पूछे! मनुष्य को यदि चुटकी ही काटी जाए तो उसका ख़ून पीना माना जाता है पर बेचारे पशु-पक्षियों की शाह-रग भी काट दी जाए तो ज़ुल्म

नहीं समझा जाता। कितने पक्षपात तथा हेरा-फेरी वाले अर्थ किये जाते हैं!

जुल्म चाहे मनुष्यों पर हो चाहे पशु-पक्षियों पर, निंदनीय कर्म है, पाप-कर्म है। परन्तु जुल्म कर फिर उसे चतुराई द्वारा छिपाने का यत्न करना या उससे इन्कारी होना दुगना पाप है।

उपरोक्त सीधे प्रश्न सीधा उत्तर मांगते हैं।

"कहते हैं! ये प्रश्न तो उनके लिए हैं जो भगवान के नाम पर जीवों की कुर्बानी देने का दावा करते हैं, परन्तु रसना के चसके अधीन उनका माँस स्वयं खा पी जाते हैं तथा इस प्रकार ईश्वर से ठगी मारते हैं।"

यह दलील बिलकुल अर्थहीन है। ईश्वर से ठगी तो तब ही हो गई जब किसी स्वार्थी मनुष्य ने आत्म-भाव की बलि देने की बजाए किसी मासूम जीव को बलि का निशाना बना लिया। कबीर जी ने दीर्घ-दृष्टि से यह अनुभव कर लिया था कि मनुष्य की जीव-हत्या का असली निशाना प्रभु की प्रसन्नता ग्रहण करना नहीं है बल्कि जिह्वा की चसका पूर्ति है। आप का प्रवचन है :

रोजा धरै मनावै अलहु सुआदति जीअ संघारै ॥
आपा देखि अवर नही देखै काहे कउ झख मारै ॥

(आसा कबीर जी, पन्ना ४८३)

[(माँस का चसकालू मनुष्य) रोज़ा रखकर अल्ला मियां को प्रसन्न करने का यत्न करता है परन्तु रसना के चसके अधीन मासूम जीवों की हत्या करता है। मनुष्य माँस खाने के प्रयोजन को ही प्रथम अपने समक्ष रखता है। (जीवों के कष्ट) की इसे कोई चिन्ता नहीं। (यह धरती का सिरदार मनुष्य) जीव-हत्या की झख क्यों मारता है ?]

माँस के चसकालू भाईयों को अपनी ज़मीर को टटोलना बनता है कि क्या वे भी कबीर जी के कथनानुसार झख तो नहीं मार रहे, जब वे यह कहते हैं कि माँस खाने में जीव-संहार बिलकुल नहीं होता ? फिर अपने जीव-हत्या के पाप-कर्म पर पर्दा डालने हेतु झटका व हलाल का बवंडर रचकर क्या वे अपनी ज़मीर से तथा गुरुवाणी के सिद्धान्त से ठगी तो नहीं मार रहे ?

झटके तथा हलाल का षड़यंत्र

जीव-हत्या के संकल्प को खुर्द-बुर्द करने हेतु माँस खाने के पक्षपाती भाईयों ने झटके तथा हलाल का षड़यंत्र रचा हुआ है। यदि दीर्घ तथा निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाये तो स्थिति स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है कि असली प्रश्न जीवों को मारने की विधि का नहीं, स्वयं जीव-हत्या का है।

रसना के चसके अधीन जीव-हत्या-रूप पाप-कर्म कमाकर प्राप्त किये माँस को अगर कोई चतुर-चालाक मुस्लिम भाई 'हलाल' कहे और कोई सिक्ख भाई उसको 'महा प्रसाद' कहे तो यह उनका व्यर्थ ढोंग है! प्रपंच है!! सच पूछो तो यह स्वयं से ध्रोह कमाने वाली, लोगों की आँखों में धूल झोंकने वाली तथा धार्मिक शब्दावली की (दुरोपयोग कारण) खिल्ली उड़ाने वाली घृणास्पद हरकत है। गुरुवाणी के अन्तरीव ईश्वरीय ज्ञान अनुसार जीवों का मालिक ऐसे बहानेबाज़ लोगों से इस पाप-कर्म का लेखा आवश्य लेगा। ज़रा सोच लें! फिर उन पर क्या गुज़रेगी!!

कबीर जीअ जु मारहि जोरु करि, कहते हहि जु हलालु ॥
दफतरु दई जब काढि है, होइगा कउनु हवालु ॥१९९॥

(सलोक कबीर जी, पन्ना १३७५)

ऐसे चतुर भाईयों के ज्ञात हेतु गुरुवाणी ईश्वरीय सत्य का निरूपण करती है कि 'हराम' में अनेक प्रकारी मसाले डालने से भी वह 'हलाल' नहीं हो सकता, अर्थात बुरी नीयत से किये गए किसी भी कुकर्म (हराम) पर पर्दा डालने हेतु यदि कोई ऊपर से ईश्वरीय कलाम पढ़ने का नाटक रचता है तो वह कुकर्म, सुकर्म में कैसे बदल सकता है ?

मारण पाहि हराम महि होइ हलालु न जाइ ॥२॥ ७॥

(वार माझ म: १, पन्ना १४१)

विवादित शब्दों 'कुठा' व 'हलाल' आदि का रहस्य भी, किसी माँस के चसकालू शेख़ को समझाते हुए श्री गुरु नानक देव जी आदेश देते हैं :

सच की काती सचु सभु सारु ॥ घाड़त तिस की अपर अपार ॥
सबदे साण रखाई लाइ ॥ गुण की थेकै विचि समाइ ॥
तिस दा कुठा होवै सेखु ॥ लोहू लबु निकथा वेखु ॥
होइ हलालु लगै हकि जाइ ॥ नानक दरि दीदारि समाइ ॥२॥१९॥

(वार रामकली म: १, पन्ना ९५६)

" 'सच' की छुरी हो, जिसको निरोल सच का लोहा लगा हो, फिर वह छुरी गुर-शब्द की साण पर तीखी की गई हो तथा ईश्वरी गुणों के ज्ञान में संभाल कर रखी हुई हो।

ऐसी दैवी घाड़त वाली छुरी से यदि कोई शेख़ कुठा (हलाल) किया जाए, फिर उसका लब-लोभ वाला लहू निकला देखें, अर्थात वह फिर लब-लोभ की मंद-भावना से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार हलाल (लब-लोभ की मंद-भावना से मुक्त) होकर वह शेख़ सत्य-स्वरूप प्रभु के चरणों में जा लगता है तथा प्रभु-दर पर उसके दीदार में जा समाता है।"

उपरोक्त गुर-उपदेश 'झटके' व 'हलाल' का बवंडर रचयतों के लिए शिक्षार्थ है।

इसलिए मनुष्य को चाहिये कि वह सच हेतु अपने आप का बलिदान देकर अर्थात आपा-भाव से मुक्त होकर तथा इस प्रकार लब-लोभ की पकड़ से छुटकारा पाकर स्वयं हलाल (पवित्र) हो, न कि रसना के चसके की ख़ातिर मासूम जीवों की हत्या कर 'झटके' व 'हलाल' का ढोंग रचे।

माँस तथा गेहूँ-भोजन

माँस खाने के पक्षपाती भाई दलील देते हैं कि गेहूँ-भोजन खाने वाले सज्जन भी जीव-हत्या के दोष से मुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि गेहूँ के दानों में भी जीव होते हैं। उनकी यह दलील भी 'मरने वालों की बिल्लाहट' वाली बात है।

सिक्ख धर्म न केवल निरोल प्रवृत्ति का मार्ग है तथा न ही निरोल निवृत्ति का, बल्कि यह प्रवृत्ति में निवृत्ति का सहज-मार्ग है। भोजन भगवान ने दिया है, इसलिए यह आवश्य खाना है तथा खाना केवल जीवन-निर्वाह हेतु है, न कि रसना के चसके अधीन। फिर यह भोजन खाना है प्रभु-नाम जपकर जीवन सफल बनाने हेतु। गुरुवाणी इसकी आज्ञा देती है :

आदि पुरख ते होइ अनादि ॥ जपीऐ नामु अंन कै सादि ॥

(गोंड कबीर जी, पन्ना ८७३)

गेहूँ-भोजन खाने वाला मनुष्य हरगिज़ हत्यारा नहीं, जैसे गृहस्थी मनुष्य भोगी होने के बावजूद धर्मी है, विकारी नहीं। हां, पर-गृह में झांकना आवश्य विकारी कर्म है। गेहूँ-दाने खाने व माँस खाने में वही अन्तर है जो एक धर्मी गृहस्थी पुरुष में तथा पर-तन-संगी विकारी मनुष्य में है।

जैसे, केशों को कंघा करने वाला सिक्ख पतित नहीं, बल्कि रहितवान (रीतिपालक) कहलाता है, चाहे कंघा करने से कुछ मुर्दा केश ज़रूर झड़ते हैं। दूसरी ओर फ़ैशन अधीन कैंची आदि से केश काटने वाला सिक्ख पतित है। इसलिए गेहूँ-दाने तथा माँस खाने वाले में वही अन्तर है जो कंघा करने वाले रहितवान (रीतिपालक) सिक्ख में तथा केश कत्ल करने वाले पतित-कर्मी सिक्ख में है।

गुरुवाणी निम्नलिखित श्लोक में गेहूँ-दाने तथा माँस, दोनों का वर्णन करते हुए गेहूँ-दानों का सेवन करने की आज्ञा देती है तथा जीवों का गला काटकर माँस-भोजन करने पर प्रश्न-चिह्न लगाती है :

कबीर खूबु खाना खीचरी जा महि अंम्रितु लोनु ।।
हेरा रोटी कारने गला कटावै कउनु ।।१८८।।

[हेरा रोटी—माँस-भोजन] *(सलोक कबीर जी, पन्ना १३७४)*

निर्णय बिलकुल स्पष्ट है, कोई माने चाहे न माने।

जब माँसाहारी भाईयों को गुरुवाणी-अनुशासन के शिकंजे से निकलने का कोई रास्ता नहीं सूझता हो तो फिर वे बौखला कर ओछे हथियारों पर उतर आते हैं और बिना सिर-पैर की ज़िराह करते हैं कि यह माँस-विरोधी विचारधारा तो भक्त कबीर जी की है। माँस-चसके की लोर में ये भाई भूल जाते हैं कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब में अंकित समूह वाणी 'गुरु-रूप' है। यह सतिगुरु जी की निजी रचना है या फिर आत्मबोध भक्तों तथा भट्टों की रचना है, जिसको श्री हजूर ने स्वीकार कर ख़ुद 'पावन बीड़' में सम्मिलित किया था। इसलिए वाणी पर किसी प्रकार का किन्तु परन्तु करना 'कुफ़र' तुल्य है। सतिगुरु जी प्रति आहर तथा निजी कल्याण हेतु समूह गुरुवाणी को सत्य कर मानना हर गुरसिक्ख का पर्म धर्म है :

परथाइ साखी महा पुरख बोलदे साझी सगल जहानै ।।
गुरमुखि होइ सु भउ करे आपणा आपु पछाणै ।।१।।१२।।

(वार सोरठि, सलोकु म: ३, पन्ना ६४७)

माँस-आहार बढ़िया भोजन

माँसाहारी भाई एक ही रट्ट लगाते हैं कि सिक्ख धर्म में खाने-पीने की कोई पाबंदी नहीं। यह कोरा झूठ है। कोई पूछे! क्या सिक्ख धर्म में तंबाकू, भांग, अफ़ीम, शराब आदि के सेवन पर कोई पाबंदी नहीं ? गुरुवाणी में तो इनके सेवन पर स्पष्ट मनाही है, परन्तु यह अलग बात है कि कुछ गुरु-आदेश से बेमुख मनुष्य शराब को पंच-रतनी (पंच-रत्न) तथा भांग को सुख-निधान का नाम देकर डकारते जा रहे हैं। ऐसी ही स्थिति माँस संबंधी है। गुरुवाणी का आदेश इस प्रकार है :

कबीर भांग माछुली सुरापानि जो जो प्रानी खांहि ।।
तीरथ बरत नेम कीए ते सभै रसातलि जांहि ।।२३३।।

(सलोक कबीर जी, पन्ना १३७७)

मछली (माँस) सेवन संबंधी गुरुवाणी के स्पष्ट निषेधात्मिक आदेशों के बावजूद कुछ भाई इसको 'महा प्रसाद' का नाम देकर इस निंदनीय पदार्थ का सेवन कर एक ओर तो गुरुवाणी के आदेशों की उल्लंघना करते हैं, दूसरी ओर इसको 'महा प्रसाद' की संज्ञा देने की ठगी मारते हैं, जबकि गुरुवाणी में इसको 'मुर्दार' तथा 'करंग-बिखू' बताकर वर्णन किया गया है। यदि कोई साधारण व्यक्ति, माँस को बढ़िया भोजन या 'महा प्रसाद' कहे तो उसकी अज्ञानता पर दया आती है, परन्तु जब किसी मिशनरी संस्था का कोई मुखिया यह बात कहे तो उसकी सूझ-बूझ पर रोना आता है।

उपरोक्त श्लोक के अर्थों की हेरा-फेरी करते हुए माँसाहारी भाई यह दलील देते हैं कि इसमें तो केवल सुरापानी (शराब पीने बाले) मनुष्यों के लिए 'भांग', 'मछली' के सेवन की मनाही का संकेत है। अच्छा! यदि उनकी यह दलील मान भी लें तो क्या जिस निंदित वस्तु की शराबी के लिए मनाही है, वह रहितवान (रीतिपालक) ख़ालसे के लिए कैसे सही हो सकती है ?

अनहोनी कपोल-कल्पना

हड्डी चबाने (माँस-आहार) के समर्थक भाईयों ने बीसवीं सदी की सभी वैज्ञानिक खोजों को मात पाने हेतु एक सुपर-वैज्ञानिक खोज की है। वह यह है :

"मनुष्य के पास एक ऐसी शक्ति है जो संसार के किसी और जीव के पास नहीं है, वह अद्‌भुत शक्ति 'मन' है।.....यह अद्‌भुत शक्ति वाला 'मन', पशु-पक्षियों के पास नहीं है।.....दु:ख या सुख केवल मन को होता है, शरीर तो केवल पीड़ा महसूस करता है या आराम अनुभव करता है। 'मन' की अनहोंद ने पशु-पक्षियों को हर्ष-शोक से रहित कर दिया है।.....पशुओं को चिन्ता कैसे हो ? उनके पास चिन्ता करने वाला 'मन' तो है ही नहीं।"

अलग अलग कोशों के अनुसार 'मन' की परिभाषा है—संकल्प विकल्प करने वाला इंद्रा। 'मन' ज्ञान-इंद्रियों तथा कर्म-इंद्रियों का कंट्रोलर है तथा प्रबल शक्ति का मालिक है। शरीर में बसी आत्मा तो हर्ष-शोक, दु:ख-सुख से निरलिप्त है, परन्तु यह जज़बे मन को आवश्य अनुभव होते हैं। मन सभी चेतन जीव-जन्तुओं में होता है, जिस कारण क्या मनुष्य और क्या पशु-पक्षी, सभी दु:ख-सुख तथा हर्ष-शोक को महसूस करते हैं। प्यार तथा घृणा के जज़बे मनुष्यों की भांति पशु-पक्षियों में भी समान उत्पन्न होते हैं। यह सत्य हमारे नित्य-प्रति जीवन में साक्षातकार होता है।

किसी कुत्ते को सोटी मारें तो वह पीड़ा-वश 'टऊं टऊं' करता है, परन्तु यदि किसी कुत्ते को थोड़ा पलोसें (प्यार करें) तो वह प्रसन्नता तथा कृतिज्ञता प्रकट करता हुआ आप के पांव चाटता है।

इसलिए जीवों पर ज़ोर-ज़ुल्म करने हेतु यह बहानेबाज़ी घड़नी कि मन की अनहोंद के कारण पशु-पक्षी हर्ष-शोक की भावना से रहित हैं, यह माँसाहारी भाईयों की सरासर सीनाज़ोरी है तथा अशरफ़ुल-मख़लुकात होने का अयोग्य लाभ लेने वाली करूर कार्यवाही है।

असल में मनुष्य की पशु-पक्षियों पर सरदारी उसकी विकसित बुद्धि के कारण है। बुद्धि तो पशु-पक्षियों के पास भी है, परन्तु उनके मुकाबले मनुष्य की बुद्धि कहीं अधिक विकसित है। इस विकसित बुद्धि का स्वामी होने के कारण उसको बुद्धिमान होने का सबूत देना बनता है, परन्तु यदि विकसित बुद्धि का स्वामी मनुष्य जीव-रचना की सरदारी के अहंकार में फूला हुआ बाकी जीव-जन्तुओं पर रसना के चसके अधीन ज़ोर-ज़ुल्म भी करे तथा विकसित बुद्धि का दुरोपयोग कर चेतन्न-श्रेणी के जीव-जन्तुओं को अपने पाप-कर्म पर पर्दा डालने हेतु जड़-श्रेणी में शामिल करने के लिए अनहोनी बातें भी घड़े तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उसके पास अपने पक्ष में कोई ठोस दलील नहीं है। वह केवल हठ-धर्मी कारण झूठ मार रहा है।

अन्त में मैं यह कथन फिर दोहराना उचित समझता हूँ कि विवादित समस्या माँस-साग के निर्णय से संबंधित झगड़ा बिलकुल नहीं है। असली मुद्दा रसना के चसके अधीन जीव-संहार का है। गुरुवाणी के प्रमाणों के प्रकाश में निश्चय ही कहा जा सकता है कि गुरुवाणी जीवन निर्वाह हेतु तथा नाम जपकर जीवन सफल करने हेतु, गेहूँ-भोजन करने की आज्ञा देती है, परन्तु रसना के चसके अधीन जीवों का गला काटकर माँस-भोजन करने की मनाही करती है।

अमृतसर **जोगिन्द्र सिंह तलवाड़ा**
१५ अगस्त, १९९७

जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ
तउ किउ मुरगी मारै ?

शराब-कबाब—संसार के जाने-माने अवगुण

शराब तथा कबाब संसार के जाने-माने अवगुण हैं। इन आदतों के शिकार होकर कई ख़ानदान, कई कौमें तथा कई देश नष्ट हो गए हैं। यह चसके इतने सबल तथा प्रबल हैं कि इनकी मार से बड़े बड़े बुद्धिजीवी भी नहीं बच सके। इन्हीं के चसकालू कई व्यक्तियों ने इनका सेवन धार्मिक रूप से सिद्ध करने के यत्न भी किये हैं तथा माँस खाने को ख़ालसा रहित (आचार-व्यवहार) का अंग बनाए जाने का धोखा (Fraud) किया है। इसी कारण गुरुवाणी के प्रकाश में इस विवाद के निरीक्षण की आवश्यक्ता पड़ती है।

शराब-कबाब का खुल्ला-खेल—ज़िम्मेवार कौन ?

बड़े आश्चर्य की बात है कि इन अवगुणों—शराब तथा कबाब की मार से सिक्ख जनता भी नहीं बच सकी, जिसके कारण सिक्ख चरित्र गिरावट की ओर गया है तथा ऐसी निम्नतम दशा सिक्ख कौम के लिए शरमिंदगी का कारण बन रही है। कौम के ज़िम्मेवार व्यक्ति इस दशा की ज़िम्मेवारी देहात की जनता पर डालते हैं तथा इसका कारण उनकी अज्ञानता तथा उनमें प्रचार की कमी बताते हैं। किसी सीमा तक यह विचार ठीक भी माना जा सकता है, पर असल में इससे बड़ा एक और कारण है, तथा वह है—कौम के कुछ मुखिया, तथाकथित प्रचारक तथा धर्म के क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्ति जो इन दो आदतों—शराब तथा कबाब, में निजी तौर पर लिप्त हैं। अपनी इन आदतों पर पर्दा डालने हेतु वे खुल्लम-खुल्ला प्रचार यह करते हैं कि शराब तथा कबाब का सेवन सिक्ख धर्म में विवर्जित नहीं, अथवा पतित-कर्म नहीं है। कई भद्र पुरुष तो अरदास कर माँस तथा भांग का गुरु महाराज जी को

भोग लगाने तक भी जाते हैं तथा इस उपरांत इन निंदनीय वस्तुओं को प्रसाद का नाम देकर वितरित करते हैं। यदि किसी को कोई संदेह हो तो वह अपनी आँखों से यह नज़ारा हर वर्ष होले-महल्ले पर आनन्दपुर में देख सकता है। यह सभ कुछ खुल्लम-खुल्ला किया जाता है। कई सज्जन तो यहां तक भी फ़तवा देते हैं कि जो मनुष्य 'महा प्रसाद' (माँस) नहीं खाता, वह सिक्ख ही नहीं।

कितनी बेतुकी बात है कि माँस खाने की अपनी निजी कमज़ोरी को छिपाने के लिए कुछ चालाक व्यक्तियों ने माँस जैसे निंदनीय, घृणित तथा ग़लीज़ (गंदे) पदार्थ का नाम 'महा प्रसाद' रख लिया है, जबकि सिक्ख परम्परा में 'महा प्रसाद' पद, पंचामृत 'कड़ाह-प्रसाद' के लिए प्रयोग किया जाना निश्चित है :

एक मिसटान पान लावत महा-प्रसादि,
एक गुरपुरब कै सिखन बुलावही ।।

(भाई गुरदास जी, कबित ३०९)

खांड ध्रित चून जल पावक इकत्र भए,
पंच मिलि प्रगट पंचाम्रित प्रगास है ।।

(भाई गुरदास जी, कबित १२४)

कोरे मट अणाइ नीरु भराइआ ।।
आणि महा परसादु वंडि खुआइआ ।।

(भाई गुरदास जी, वार २०, पउड़ी १०)

इसी प्रकार कई भांग के प्रेमी पुरूषों ने भांग को 'सुख-निधान' तथा शराब को 'पंच-रतनी' का नाम दिया हुआ है। उनका यह कर्म वाम-मार्गियों की नकल ही है, परन्तु ख़ालसा जी के निर्मल पंथ में इस पोप-लीला का कोई स्थान नहीं है। किसी घृणित वस्तु का अच्छा नामांकन कर लेने से उसका मूल नहीं बदल सकता। ऐसे प्रपंच के रचयता अपने आप से तथा दूसरों के साथ धोखा करने का ओछा तथा मिथ्या यत्न करते हैं। यह मिथ्य घाड़त व्यर्थ है :

कूड़ु न पहुंचै सच नो सउ घाड़त घड़ीऐ ।।

(भाई गुरदास जी, वार ३४, पउड़ी २१)

मिथ्या (कूड़) को चाहे चमकीली पुशाक पहनाकर, सजाकर पेश किया जाए, वह सच नहीं बन सकता। सात पर्दे फाड़कर मिथ्या अंतः प्रकट हो ही जाता है तथा मिथ्या की अंतः में हार ही होती है।

कूड़ निखुटे नानका ओड़कि सचि रही ॥

(वार रामकली, म: १, पन्ना १५३)

इसका तात्पर्य यह है कि शराब-कबाब का दौर-दौरा चलाने की ज़िम्मेदारी को गाँवों की अशिक्षित जनता पर डालकर पीछा नहीं छुड़ाया जा सकता। इसकी ज़िम्मेदारी कौम के धार्मिक नेताओं पर है, जो स्वयं इन चसकों के शिकार हैं तथा बड़े गर्व से इसके हक्क में प्रचार करते हैं।

माँस खाने की दलीलें

माँस खाने के समर्थक सज्जन अक्सर माँस खाने की पुष्टि में निम्नलिखित दलीलें देते हैं :

(१) सिक्ख धर्म में खाने पीने वाले किसी पदार्थ पर कोई पाबंदी नहीं। माँस खाना या न खाना प्रत्येक व्यक्ति की अपनी रुची पर निर्भर है। गुरमति की कसौटी केवल यह है कि जिस पदार्थ के सेवन करने से शरीर को कष्ट हो तथा मन में विकार पैदा हों, उसका सेवन करना हानिकारक है। इस कथन की पुष्टि में वह गुरुवाणी की एक पंक्ति को अपनी इच्छा अनुसार बदलकर, उसका हवाला देते हैं :

बाबा सा खाणा खुसी खुआरु ॥
जितु खाधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलै विकार ॥

नोट— अंक १ में शब्द 'सा' के स्थान पर गुरुवाणी में शब्द 'होरु' है।

(२) सिक्ख धर्म में केवल मुस्लिम विधि अनुसार कलमा पढ़कर तैयार किये गए माँस की मनाही है, लेकिन झटके पर रोक नहीं है।

(३) पुरातन ऐतिहासिक दस्तावेज़ों में माँस खाने की कोई मनाही नहीं मिलती, बल्कि गुरु साहिब के समय लंगर में माँस परोसने के प्रमाण मिलते हैं।

(४) यदि मुर्गा, बकरा, तित्तर, बटेरा आदि जानवर मारने पर जीव-हत्या का दोष लगता है तो बाकी पदार्थ—गेहूँ, दालें, दूध, पानी आदि खाने पीने वाले मनुष्य भी इस दोष से मुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि गेहूँ के सभी दानों में जीव हैं।

(५) माँस न खाने वाले मनुष्य में कायरता प्रवेश कर जाती है।

(६) माँस बहुत ताकतवर वस्तु है। इसके सेवन से शरीर बलवान रहता है।

नीचे उपरोक्त दलीलों की छान-बीन कर एक एक दलील पर गुरुवाणी के प्रकाश में विचार करने का यत्न किया जाता है :

दलील नंः १

विचार

माँसाहारी भाई यह दलील देते हैं कि सिक्ख धर्म में खाने पीने के किसी पदार्थ पर पाबंदी नहीं। माँस खाना या न खाना प्रत्येक व्यक्ति की अपनी रुचि पर निर्भर है।

यह कथन ठीक नहीं कि सिक्ख धर्म में किसी पदार्थ के खाने पर पाबंदी नहीं। सिक्ख धर्म खाने पीने के संबंध में अपने अनुयायियों को निजी मानसिक रुचि के अनुसार या शारीरिक स्थिति के अनुकूल केवल ऐसे पदार्थों का सेवन करने की आज्ञा देता है जिनसे तन तथा मन प्रफुल्लित हों तथा सेवा तथा चिन्तन में सहायता मिले। इसके विपरीत ऐसे पदार्थ जिनका सेवन शरीर को निर्बल या सुस्त करे, जैसा कि तंबाकू, पोस्त, भांग, अफ़ीम, शराब आदि या जिनका सेवन दूसरे जीवों के लिए कष्ट का कारण बने तथा खाने वाले मनुष्य का तन और मन ज़ोर-ज़ुल्म का विकारी बने, ऐसे समूचे पदार्थों का सेवन गुरमति अनुसार निरसंदेह विवर्जित है। गुरुवाणी का आदेश है :

कबीर भांग माछुली सुरापानि जो जो प्रानी खांहि ॥
तीरथ बरत नेम कीए ते सभै रसातलि जांहि ॥२३३॥

(सलोक कबीर जी, पन्ना १३७७)

कबीर खूबु खाना खीचरी जा महि अंम्रितु लोनु ॥
हेरा रोटी कारने गला कटावै कउनु ॥१८८॥

[हेरा—माँस] *(सलोक कबीर जी, पन्ना १३७४)*

तात्पर्य, यह है कि भांग, मछली, शराब खाने पीने वाले प्राणी के किये पुण्य-कर्म भी किसी काम नहीं आते तथा वे सदैव गिरावट को ही प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही यह भी निर्णय कर दिया गया है कि कुदरत की ओर से उदर-पूर्ति हेतु प्राप्त हुआ कुदरती भोजन, सादा (मिस्सा-तिस्सा), अर्थात, अमृत जैसा स्वच्छ तथा स्वादिष्ट भोजन है, जिसके सेवन से नाम जपने के लिए शरीर का बल स्थिर रहता है। ऐसे आदर्शक आहार के होते हुए फिर कौन और किस लिए जीवों का गला काटकर हत्या करे ?

गुरुवाणी के प्रकाश में जीवों को मारकर प्राप्त किये मुर्दार-माँस के निषेध संबंधी तो दो राय की गुंजाइश ही नहीं, बल्कि वे वस्तुएं या कर्म भी विवर्जित हैं, जिनकी मुर्दार से तुलना की गई है।

गुरुवाणी का स्पष्ट निर्णय है कि मिथ्या, कपट, ज़ोर-ज़ुल्म तथा

बल-छल से पराया हक्क मारना मुर्दार तुल्य है तथा यह गुरु के सिक्खों के लिए विवर्जित है। गुरु-पीर भी तब ही हामा (साक्षी) भरता है जब कोई मुर्दार खाने से बचा हुआ हो :

कूड़ु बोलि मुरदारु खाइ ॥ *(वार माझ म: १, पन्ना १३९)*

हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ ॥
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ ॥

(वार माझ म: १, पन्ना १४१)

पराये हक्क की निंदा तथा निषेध हेतु उसकी मुर्दार से तुलना की गई है। इसका भाव स्पष्ट है कि मुर्दार निंदनीय तथा निषेधात्मक वस्तु है। सुअर हो या गाय, कलमा पढ़कर कांट-छांट की हो या सति श्री अकाल कहकर कृपाण (तलवार) से काटा गया हो, या कृपाण से धीरे-धीरे काटा गया हो या एक झटके से मारा गया जानवर, मुर्दार ही है। बात स्पष्ट है कि अगर पराया हक्क मारना मुर्दार खाने के समान है तथा विवर्जित है, अगर झूठ बोलना मुर्दार खाने तुल्य है तथा विवर्जित है तो इसी तरह मुर्दार खाना कैसे योग्य हो सकता है ? फिर मुर्दार खाने वाला (मुर्दार-ख़ोर) व्यक्ति, गुर-पीर की ओर से उस प्रति हामा भरे जाने की आशा कैसे कर सकता है, जबकि वह खुल्लम-खुल्ला गुरु-हुक्मों का उल्लंघन करने का केवल निजी तौर पर ही दोषी नहीं बनता, बल्कि दूसरों को इस दोष में खचित करने के लिए धर्म की आड़ लेकर तथा इस प्रकार धर्म को बदनाम करने की क्रूर हरकत करता हो ?

माँस खाने हेतु मासूम जानवरों को जान से मारने तथा मुर्दार खाने वाले व्यक्तियों को गुरुवाणी 'भूतनों' की संज्ञा देती है :

गैबान हैवान हराम कुसतनी मुरदार बखोराइ ॥

[गैबान—भूत-प्रेत] *(तिलंग म: ५, पन्ना ७२३)*

भाई गुरदास जी की वाणी, जो गुरुवाणी की कुंजी मानी जाती है, भी जीवों को मारकर माँस खाने की स्पष्ट मनाही करती है :

जे करि उधरी पूतना, विहु पीआलणु कंमु न चंगा ॥.....
जे कासाई उधरिआ, जीआ घाइ न खाईऐ भंगा ॥

(भाई गुरदास जी, वार ३९, पउड़ी १९)

गुरु बाबे नानक ने मल्लिक भागो के कूड़-कुसत्य तथा ज़ोर-ज़ुल्म द्वारा कमाए धन से तैयार किये माल्-पूड़ों को मुर्दार जानकर त्याग किया। गुरु पातिशाह ने प्रत्यक्ष कौतक दिखाकर समूह-जन के समक्ष यह सच्चाई

प्रकट की कि लूटमार की भावना हिंसक तथा निंदनीय है तथा ज़ोर-ज़ुल्म कर प्राप्त किया पराया धन पापों की कमाई है। इससे ख़रीदे पदार्थ चाहे स्वच्छ तथा स्वादिष्ट ही हों, वास्तव में गरीबों का ख़ून ही हैं।

यदि गरीबों को तंग कर, लूटमार कर, ठगी-ठगौरी लगाकर प्राप्त धन, गुरु बाबे के लिए लोगों के ख़ून अथवा मुर्दार समान है तो जीवों का कत्ल कर, उनका प्रत्यक्ष ख़ून कर प्राप्त किया मुर्दार-माँस, उनके सिक्खों के लिए 'महा प्रसाद' कैसे बन गया ? स्पष्ट है कि माँस जैसे विषैले पदार्थ के लिए 'महा प्रसाद' जैसे उत्तम पद का प्रयोग प्रचलित करना कुछ चसकालू माँस-ख़ोरे सज्जनों की सोची-समझी कुटिल साज़िश है।

दो पक्षी हैं : हंस तथा बगुला। इनकी श्वेत सूरत एक जैसी मनमोहनी है। दोनों का सफ़ेद वेश मन पर सातविक प्रभाव डालता है, परन्तु गुरुवाणी में उनमें से एक की, उस द्वारा जीवन-निर्वाह के लिए अपनाई गई ख़ुराक के आधार पर, सराहना की गई है तथा दूसरे की निंदा।

हँस उत्तम है।

क्यों ?

क्योंकि, हँस का आहार उत्तम है।

सरवर अंदरि हीरा मोती सो हंसा का खाणा ॥

(वार रामकली, म: १, पन्ना ९५६)

बगुला नीच है।

क्यों ?

क्योंकि बगुले का आहार घृणित है।

बगुला काग नीच की संगति जाइ करंग बिखू मुखि लाईऐ ॥

(रामकली म: ४, पन्ना ८८१)

गुरुवाणी के दैवी उपदेशानुसार 'करंग बिखू' के सेवन करने के कारण ही बगुला घृणित पक्षी है। फिर समझ नहीं आती कि यह 'करंग बिखू' गुरु के सिक्खों के लिए 'महा प्रसाद' कैसे तथा कब बन गया ? तथा 'करंग बिखू' का विवर्जित भोजन खाकर कोई कैसे गुरु का सच्चा सिक्ख होने का दावा कर सकता है ?

क्या कभी कोई माँ अपने पुत्र को विष खाने की आज्ञा दे सकती है ? फिर यह सोचना भी अपराध से कम नहीं भासता कि संसार के आध्यात्मिक पिता, सतिगुरु जी ने 'करंग बिखू' खाने की आज्ञा अपने सिक्ख बच्चों को दी हुई है, कभी नहीं! हम गुरु के नाम-लेवा सिक्ख, निरंकुश होकर

'करंग-बिखू' को 'महा प्रसाद' का नाम देकर खाना शुरू कर दें तो हमारे सिर पर कबीर जी का निम्नलिखित श्लोक सदैव मूसल की तरह पड़ता रहेगा, वैसे ही जैसे यदि बच्चा अनुचित कार्य करने से न हटे तो माँ नसीहत के तौर पर बच्चे को चांटा भी मार देती है :

कबीर साचा सतिगुरु किआ करै जउ सिखा महि चूक ॥
अंधे एक न लागई जिउ बांसु बजाईऐ फूक ॥१५८॥

(सलोक कबीर जी, पन्ना १३७२)

माँस खाने के समर्थक भाई यह दलील देते हैं कि सिक्ख धर्म में खाने पीने के किसी विशेष पदार्थ पर किसी प्रकार की कोई मनाही नहीं। इस संबंध में वे गुरुवाणी की निम्नलिखित पंक्ति को स्वै-इच्छा अनुसार बदलकर हवाला देते हैं :

बाबा सा खाणा खुसी खुआरु ॥
जितु खाधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलै विकार ॥

नोट : पहली पंक्ति में शब्द 'सा' के स्थान पर शब्द 'होरु' है।

माँस खाने के संबंध में उपरोक्त हवाला अनुचित है। इस संबंध में समूचे शब्द के दर्शन करने ज़रूरी हैं, जिसमें उपरोक्त पंक्तियां आती हैं। शब्द इस प्रकार है :

सभि रस मिठे मंनिऐ सुणिऐ सालोणे ॥
खट तुरसी मुखि बोलणा मारण नाद कीए ॥
छतीह अंम्रित भाउ एकु जा कउ नदरि करेइ ॥१॥
बाबा होरु खाणा खुसी खुआरु ॥
जितु खाधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥१॥ रहाउ ॥
रता पैनणु मनु रता सुपेदी सतु दानु ॥
नीली सिआही कदा करणी पहिरणु पैर धिआनु ॥
कमरबंदु संतोख का धनु जोबनु तेरा नामु ॥ २॥
बाबा होरु पैनणु खुसी खुआरु ॥
जितु पैधै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥१॥ रहाउ ॥
घोड़े पाखर सुइने साखति बूझणु तेरी वाट ॥
तरकस तीर कमाण सांग तेगबंद गुण धातु ॥
वाजा नेजा पति सिउ परगटु करमु तेरा मेरी जाति ॥३॥

बाबा होरु चड़णा खुसी खुआरु ॥
जितु चड़िऐ तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥१॥ रहाउ ॥
घर मंदर खुसी नाम की नदरि तेरी परवारु ॥
हुकमु सोई तुधु भावसी होरु आखणु बहुतु अपारु ॥
नानक सचा पातिसाहु पूछि न करे बीचारु ॥४॥
बाबा होरु सउणा खुसी खुआरु ॥
जितु सुतै तनु पीड़ीऐ मन महि चलहि विकार ॥१॥ रहाउ॥

(सिरीरागु महला १, पन्ना १६-१७)

देखा गया है कि सभी भाई अपने पक्ष की पुष्टि हेतु 'सा खाणा खुसी खुआरु' बोलते हैं, जबकि गुरुवाणी की पंक्ति में "होरु खाणा खुसी खुआरु" अंकित है। शब्द 'होरु' को 'सा' में बदलकर पंक्ति को अशुद्ध रूप में पता नहीं क्यों पेश किया जाता है।

इस शब्द के चार पद हैं तथा प्रत्येक पद के बाद आई 'रहाउ' की पहली पंक्ति में 'होरु' शब्द आता है, तथा यहां 'होरु' शब्द की अपनी विशेष महत्ता है।

पहले पद में गुरु बाबा जी जीवन में सदीवी आनंद तथा आत्मिक प्रगति हेतु गुरसिक्ख जज्ञासुयों के लिए एक आदर्शक आध्यात्मिक भोजन का वर्णन करते हैं तथा इस पद के बाद वाली 'रहाउ' की पंक्तियों में चेतावनी देते हैं कि इस आदर्शक भोजन के विपरीत और (मायक) खाना खाना ख़ुशी का बाधक है। अन्य के तीन पदों में गुरु पातिशाह जी की ओर से आध्यात्मिक पुशाक, आध्यात्मिक स्वारी तथा आध्यात्मिक लीनता (नींद) का वर्णन करते हुए प्रत्येक पद के अन्त में चेतावनी दी हुई है कि इनके मुकाबले में और (मायक) पुशाक, (मायक) स्वारी तथा (मायक) लीनता, यह सभी ख़ुशी की बाधक हैं।

उपरोक्त संक्षेप सी विचार से स्पष्ट निर्णय हो जाता है कि उपरोक्त शब्द में गुरु जी मायक पदार्थों के अल्पकालीन स्वाद व आनंद का आध्यात्मिक प्राप्तियों तथा सदीवी रस और आनंद के साथ परस्पर टाकरा कर आध्यात्मिकवाद को पदार्थवाद से उत्तम तथा सुखदाई साबत कर रहे हैं। गुरु पातिशाह जी की आध्यात्मिक दृष्टि में "तुधु बाझु कूड़ो कूड़ु" है। 'आसा की वार' के दसवें श्लोक में इसकी विस्तरित व्याख्या की हुई मिलती है :

कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ॥
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु ॥
कूड़ु सुइना कूड़ु रुपा कूड़ु पैन्हणहारु ॥
कूड़ु काइआ कूड़ु कपड़ु कूड़ु रूपु अपारु ॥

कूड़ु मीआ कूड़ु बीबी खपि होए खारु ।।
कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ।।
किसु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहारु ।।
कूड़ु मिठा कूड़ु माखिउ कूड़ु डोबे पूरु ।।
नानकु वखाणै बेनती तुधु बाझु कूड़ो कूड़ु ।।१।।

(आसा की वार म: १, पन्ना ४६८)

इस तरह समूची विचार का सारांश यह निकला है कि उपरोक्त शब्द में सतिगुरु जी उपदेश करते हैं कि हम मायक रसों–कसों में खचित होने के स्थान पर नाम–रस को जीवन का आधार बनाएं, ताकि जीवन अधिक सुखी तथा प्रसन्न हो तथा प्रसन्नता सदीवी तथा स्थाई रहे। फिर समझ में नहीं आता कि उपरोक्त शब्द का माँस खाने के पक्ष में कैसे हवाला दिया जाता है, जबकि माँस को गुरुवाणी में 'करंग बिखू' कहकर वर्णित किया गया है। तो निःसंदेह माँस निंदनीय पदार्थ है तथा सिक्ख धर्म में इसके सेवन की मनाही है।

क्या माँस खाना विकार पैदा नहीं करता ?

कोई यह मानने से कैसे इन्कार कर सकता है कि माँस प्राप्त करने में ज़ोर–ज़ुल्म प्रयुक्त होता है। ज़ोर–ज़ुल्म अपने आप में एक बड़ा विकार है। माँस खाने से मन का निर्दयी हो जाना ही एक बड़ा विकार है। माँस खाने से अन्य बुरी आदतें भी स्वभाविक ही आ चिपकती हैं। माँस खाने वाले पुरुष स्वभाविक शराबी तथा विषयी नज़र आते हैं, लेकिन हमारा मुख्यता संबंध माँस प्राप्ति के लिए उपयोग किये जाते ज़ोर–ज़ुल्म से है। ज़ोर–ज़ुल्म से प्राप्त किया माँस खाकर नाम जपने हेतु मन का टिकाव कैसे संभव हो सकता है ?

जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु ।।
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु ।।१।।६।।

(सलोकु म: १, पन्ना १४०)

[यदि कपड़े पर ख़ून के छीटे पड़ जाने से पुशाक अपवित्र हो जाती है (तथा इस पुशाक को पहनकर पूजा–पाठ, भजन–बंदगी में बैठना उचित नहीं) तो जो मनुष्य (जानवरों का माँस खाने के कारण उनका) इसी तरह रत्त (ख़ून) पीते हैं, उनका चित्त कैसे पवित्र हो सकता है।]

अगर यदि कोई निरंकुश (तथाकथित) सिक्ख यह शेख़ी मारे कि विष (तंबाकू) का सेवन कर उसके अंदर कोई विकार उत्पन्न नहीं होता, तो क्या उसके लिए तंबाकू का सेवन करने की कोई मनाही नहीं ?

सभी जानते हैं कि तंबाकू का सेवन अपने आप में एक बड़ा विकार है तथा इसके परिणाम घातिक हैं। रहितनामों में तंबाकू को भी विष बताकर वर्णन किया गया है। इसीलिए तंबाकू तथा अन्य नशीले पदार्थों के सेवन की सिक्ख धर्म में मनाही है।

माँस एक विकार-उत्तेजक (Passion Provoking) तथा तामसिक भोजन माना गया है। यह मनुष्य का प्राकृतिक आहार नहीं तथा इसके सेवन से शरीर तथा मन दोनों पर कुदरत-विरोधी परिस्थितियों का उत्पन्न होना संभव है। माँस जीवों को काटकर प्राप्त होता है तथा यह दुष्टों का खाना है। जीवों को काटना हत्या है, जो कि एक बड़ा विकार है :

असंख गलवढ हतिआ कमाहि ॥
असंख पापी पापु करि जाहि ॥ *(जपु जी साहिब)*

जब भी किसी के मन में रसना के चसके अधीन माँस खाने का विचार उत्पन्न होता है उसी समय उसका मन विकारी हो जाता है। फिर वह तुरंत ही कसाई की दुकान पर जाता है या स्वयं ही कसाई बनने पर उतर आता है।

हैरानी होती है जब किसी गुरसिक्ख को यह कहते सुनते हैं कि माँस खाने से विकार उत्पन्न नहीं होता।

सीधा प्रश्न है कि जिस पदार्थ को गुरुवाणी में 'करंग बिखू' बताकर निंदा गया है, तथा जिसके प्राप्त करने में ज़ोर-ज़ुल्म करना पड़ता है और कसाई बनने तक की नौबत आती है, उसका सेवन गुरु के सिक्ख-पुत्रों के लिए कैसे उचित है ?

दलील नंः २

माँसाहारी भाईयों द्वारा दलील दी जाती है कि सिक्ख धर्म में मुस्लिम तरीके से जानवरों को मारकर, अर्थात हलाल कर तैयार किये माँस की मनाही है, झटका माँस खाना उचित है।

विचार

इस दलील का निरीक्षण करने से पहले 'कुठा' (हलाल) तथा 'झटका' संबंधी जानकारी लेनी लाभदायक होगी :

कुठा (हलाल) : गुरुवाणी की निम्नलिखित पंक्तियों में 'कुठा' (हलाल) शब्द आता है :

अभाखिआ का 'कुठा' बकरा खाणा ।।
चउके उपरि किसै न जाणा ।। *(वार आसा म: १, पन्ना ४७२)*

तिस दा 'कुठा' होवै सेखु ।।
लोहू लबु निकथा वेखु ।। *(वार रामकली, म: १, पन्ना ९५६)*

पाप करेदड़ सरपर मुठे ।।
अजराईलि फड़े फड़ि 'कुठे' ।। *(मारू म: ५, पन्ना १०१९)*

[कुठा (हलाल)—हलाल हुआ, अथवा बेरहमी से मारा हुआ। परन्तु इस पद के मन-माने अर्थ किये जाते हैं—'मुस्लिम विधि से काटा गया जीव'।]

झटका : 'झटका' पद गुरुवाणी में कहीं नहीं है। इसके प्रचलित अर्थ किये जाते हैं—'सति स्री अकाल कहकर शस्त्र के एक ही वार से जीव का सिर काटना'।

'कुठा' (हलाल) शब्द पंजाबी व्याकर्ण अनुसार 'कोहणा' धातु से बना 'क्रिया-फल कारदंतक' है तथा इसके अर्थ हैं—'कोहिआ हुआ' (हलाल किया हुआ)। पंजाबी के ऐसे और शब्द पुष्टि हेतु नीचे दिये जाते हैं :

रुसिआ	(रुट्ठा)	: रूठा
वसिआ	(वुट्ठा)	: बसा
ढहिआ	(ढट्ठा)	: गिरा
देखिया	(डिट्ठा)	: देखा
मोहिआ	(मुट्ठा)	: मोहित

'कुठा' (हलाल) के अर्थ हैं 'कोहिआ हुआ माँस' तथा ख़ालसा रहित मर्यादा में कुठा (हलाल) खाना विवर्जित है। इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि छुरी से हलाल किया जाए या किसी और हथियार से काटा जाए, अर्थात दोनों हालतों में ही जानवरों को शारीरिक तथा मानसिक कष्ट होता है। यह तो माना जा सकता है कि जानवर को एक ही वार से काटने के मुकाबले धीरे धीरे काटने में अधिक कष्ट होता है, परन्तु यह कहना कि झटके से जानवर को कत्तई कष्ट नहीं होता, अपने मन को धोखा देने वाली बात है। जानवर जब अपने साथियों को कसाई के हाथों कटते हुए देखता है तथा उनकी चीख-पुकार को सुनता है और फिर तेज़ हथियार लिए कसाई को अपनी ओर आते देखता है तो डर तथा मानसिक सहम से उसके

हवास उड़ जाते हैं। बेचारा चिल्लाहट करता है। कसाई के हाथों से निकल निकल जाता है। उसका मानसिक तथा शारीरिक कष्ट चोटी (शिखर) पर पहुंच जाता है, जब, कसाई उसको शिकंजे में जकड़कर तेज़ हथियार के वार से उसकी गर्दन धड़ से अलग कर देता है।

अजीब बात है कि अपनी रसना के स्वाद के लिए लोभ-लहर के हल्काए हुए हम बेकसूर मासूम तथा बे-ज़ुबान (बे-ज़ुबान इसलिए कि वे हमारे ज़ोर-ज़ुल्म विरुद्ध फ़रियाद नहीं कर सकते) जानवरों पर ज़ुल्म करते हैं, उनको काटते हैं और फिर बड़े धीरज के साथ यह दावा करते हैं कि जी, एक ही वार से काटने से जानवर को कत्तई कष्ट नहीं होता। यह ज़ुल्म मनुष्य शायद इसलिए करता है कि संसार में सभी न्यायालय मनुष्य ने स्वयं बनाए हुए हैं। मनुष्य जाति द्वारा बनाए गए न्यायालयों में चाहे मनुष्य द्वारा जानवर पर किये गए ज़ोर-ज़ुल्म के विरुद्ध फ़रियाद की कोई गुंजाइश नहीं, परन्तु समस्त जीव-जन्तुओं के मालिक परमात्मा की सच्ची दरगाह में प्रत्येक दीन-दुःखी की पुकार सुनकर उसको सच्चा न्याय प्रदान किया जाता है। परमात्मा के धर्म-न्याय की मार से कोई भी ज़ालिम बच नहीं सकता, चाहे वह बड़ा हो या छोटा।

धरम राइ नो हुकमु है बहि सचा धरमु बीचारि ॥
दूजै भाइ दुसटु आतमा ओहु तेरी सरकार ॥

(सिरीरागु म: ३, पन्ना ३८)

गुरुवाणी का फ़तवा प्रत्येक ज़ालिम के लिए स्पष्ट तथा एक समान है :

कबीर जोरु कीआ सो जुलमु है लेइ जबाबु खुदाइ ॥
दफतरि लेखा नीकसै मार मुहै मुहि खाइ ॥२००॥

(सलोक कबीर जी, पन्ना १३७५)

कबीर जीअ जु मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु ॥
दफतरु दई जब काढि है होइगा कउनु हवालु ॥१९९॥

(सलोक कबीर जी, पन्ना १३७५)

सीह पजूती बकरी मरदी होई हड़ हड़ हसी ॥
सीहु पुछै विसमादु होइ इतु अउसरि कितु रहसि रहसी ॥
बिनउ करेंदी बकरी पुत्र असाडे कीचनि खसी ॥
अक धतूरा खाधिआं कुहि कुहि खल उखलि विणसी ॥
मासु खानि गल वढि कै हालु तिनाड़ा कउणु होवसी ॥

गरबु गरीबी देह खेह खाजु अखाजु अकाजु करसी ।।
जगि आइआ सभ कोइ मरसी ।। *(भाई गुरदास जी, वार २५, पउड़ी १७)*

कुहै कसाई बकरी लाइ लूण सीख मासु परोआ ।।
हसि हसि बोले कुहींदी खाधे अकि हालु इहु होआ ।।
मास खानि गलि छुरी दे हालु तिनाड़ा कउणु अलोआ ।।
जीभै हंदा फेड़िआ खउ दंदां मुहु भंनि विगोआ ।।
पर तन पर धन निंद करि होइ दुजीभा बिसीअरु भोआ ।।
वसि आवै गुरुमंत सपु निगुरा मन मुखु सुणै न सोआ ।।
वेखि न चलै अगै टोआ ।। *(भाई गुरदास जी, वार ३७, पउड़ी २१)*

रसना के स्वाद के लिए जीवों का संहार करने पर गुरुवाणी स्पष्ट विवर्जित करती है। संहार के लिए चाहे कोई भी तरीका काम में लाया जाए—'झटका' या 'हलाल', हत्या का दोश हर हालत में कायम रहता है। साधारण मनुष्य बेसमझी में माँस खाने की ग़लती करते हैं, यह कुछ और बात है, परन्तु हैरानी की बात तो यह है कि सूझ बूझ वाले व्यक्ति रसना के चसके अधीन जीवों को मारकर माँस खाने का कुकर्म करते हैं, तथा फिर इस कुकर्म को शुभ-कर्म सिद्ध करने के लिए यह झूठी दलीलें घड़ते हैं कि जी! इस जानवर की ईश्वर के नाम पर बलि दी गई है और इसकी जून कट गई है। ऐसे व्यक्तियों के लिए गुरुवाणी में आदेश है कि वे स्वार्थी लोग लोभ-लहर में अन्धे होकर केवल रसना के चसके का तथा अपना पेट बढ़ाने का ही ध्यान करते हैं, बेचारे जानवरों के कष्ट का उन्हें ज़रा-मात्र भी ध्यान नहीं आता। संसार में स्वादिष्ट तथा पौष्टिक पदार्थ अनेक हैं, जो धरती के सिरदार मनुष्य को प्राप्त हैं। फिर जानवरों का गला काटने का अनर्थ कर मनुष्य पता नहीं क्यों झख मारता है ? यथा गुरुवाक्य है :

रोजा धरै मनावै अलहु, सुआदति जीअ संघारै ।।
आपा देखि अवर नही देखै, काहे कउ झख मारै ।।
(आसा कबीर जी, पन्ना ४८३)

अफ़सोस तो इस बात का है कि माँसाहारी चालाक मनुष्यों ने ख़ास विधि अनुसार तैयार किये गए माँस के खाने को धर्म में शामिल किया हुआ है। गुरुवाणी ऐसी प्रपंच लीला रचने वाले प्रपंच-जनों का ख़ूब पोल खोलती है :

जीअ बधहु सु धरमु करि थापहु अधरमु कहहु कत भाई ।।
आपस कउ मुनिवर करि थापहु का कउ कहहु कसाई ।।
(मारू कबीर जी, पन्ना ११०३)

और तो कोई बदल जाए, पर गुरु के नाम-लेवा सिक्ख, यह आदेश उन पर लागू होने से, किस प्रकार बेमुख हो सकते हैं ? अर्थ स्पष्ट है :

"हे गुरु के सिक्खो! जीवों को मारते हो तथा इस कुकर्म को धर्म रहित-मर्यादा बताकर मानते तथा प्रचारते हो, तो अधर्म (कुरहित) किस बला का नाम है ?"

"यदि (जीवों पर ज़ोर-जुल्म कर प्राप्त किया हुआ, माँस जैसा निंदनीय पदार्थ खाकर फिर भी) अपने आपको श्रेष्ट पुरुष (संत-ख़ालसा) समझते हो तो फिर कसाई कौन हुआ ?"

झटकई, कसाई तथा बुच्चड़ एक ही व्यक्ति के प्रतीक शब्द हैं, जो जीवों को काटने का कार्य करता है, चाहे वह किसी भी धर्म का हो। यह कोई आदरणीय शब्द नहीं, लेकिन जानवरों को काटने वाले अथवा खाने वाले इस घृणित श्रेणी से निकल नहीं सकते।

कितना अंधेर है, जिस ख़ालसे की उत्पत्ति ज़ोर-जुल्म का नाश करने के लिए की गई हो, वह ख़ालसा स्वयं ही जीवों के प्रति ज़ालिम बन बैठे! धक्का करने वाला व्यक्ति अपनी ग़लती कभी माना करता है ? बिलकुल नहीं। औरंगज़ेब जाना-माना ज़ालिम था, पर वह इस्लाम का बुर्का पहनकर सदैव ही अपने जुल्म को छिपाने का यत्न करता रहा। चालाक व्यक्ति अपनी कमज़ोरियों को छिपाने हेतु सदैव धर्म का सहारा लेते हैं। यह सहारा लेने के बावजूद किसी के कुकर्म तो अधिक देर तक छिपे नहीं रह सकते, धर्म के सहारे किये गए कुकर्मों के कारण धर्म आवश्य बदनाम हो जाता है। जीव-हत्या को धर्म का अंग बताकर, अर्थात ख़ालसा रहित-मर्यादा में शामिल बताकर माँस के चसकोरे भाई, क्या ऐसा कर सिक्ख धर्म को बदनाम नहीं कर रहे ?

दया दैवी-गुणों का सिरमौर गुण है। इसको धर्म की नींव माना जाता है। दयावान मनुष्य का व्यक्तित्व प्रभावशाली तथा मीठा होता है तथा दूसरों के साथ उसका व्यवहार सुखद तथा सुखदाई होता है। इसके विपरीत निर्दयी पुरुष रूखा तथा कठोर होता है और उसका दूसरों के प्रति व्यवहार तीखा तथा दुखदाई होता है।

गुरुवाणी में दया की बहुत महत्ता और प्रशंसा है, कुछ मात्र प्रमाण पुष्टि हेतु निम्न दिये जाते हैं :

धौलु धरमु दइआ का पूतु ॥ *(जपु जी साहिब)*

['धर्म', जिसने धरती को थामा हुआ है, दया का पुत्र है।]

अठसठि तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवानु ।।

(बारह माहा मांझ म: ५, पन्ना १३६)

[जीवों पर दया करनी अठसठ तीर्थों पर स्नान करने के समान है तथा जीव-दया द्वारा ही मनुष्य स्वीकार्य होता है।]

मनि संतोखु सरब जीअ दइआ ।।
इन बिधि बरतु संपूरन भइआ ।। *(गउड़ी म: ५, पन्ना २९९)*

[जीवन में सत्य, संतोष तथा दया धारण करनी ही सच्चा तथा श्रेष्ट व्रत है।]

दयालं सरबत्र जीआ पंच दोख बिवरजितह ।। ४०।।

(सलोक सहसक्रिती म: ५, पन्ना १३५७)

[सत्य पुरुषों के गुणों में उत्तम गुण यह है कि वे समस्त जीवों के प्रति दया रखते हैं, तथा पंच-दोष (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) से दूर रहते हैं।]

इसीलिए गुरुवाणी का आदेश है :

खसमु पछानि तरस करि जीअ महि मारि मणी करि फीकी ।।

(आसा कबीर जी, पन्ना ४८०)

[सभी जीवों में प्रभु निवास करता जानकर तथा उन पर तरस कर तथा ख़ुदग़रज़ी एवं अहंकार को जीवन में अस्वादिष्ट समझकर त्याग दो।]

उपरोक्त गुरु-प्रमाणों से स्पष्ट है कि 'जीव-दया' गुरमति का प्रमाणित, प्रमुख तथा पहला सिद्धान्त है। तो प्रश्न यह उठता है कि क्या माँसाहारी सिक्खों को इस सिद्धान्त को मानने तथा अपनाने से छूट मिली हुई है ? यदि है तो कहां ? परन्तु यदि जीव-दया का सिद्धान्त सब पर लागू होता है तो क्या ज़ोर-जुल्म से प्राप्त किया माँस खाने से इस सिद्धान्त की उल्लंघना नहीं होती ?

निरसंदेह 'जीव-दया' तथा 'जीव-हत्या' परस्पर विरोधी विचारधाराएं हैं। पहली विचारधारा की सिक्ख धर्म में प्रशंसा है तथा दूसरी का निषेध।

फिर गुरु के नाम-लेवा सिक्ख जीव-हत्या कर क्यों गुरमति की रहित-मर्यादा को भंग करते हैं ?

कुदरती प्रश्न है कि क्या जीव-दया का दायरा केवल मनुष्य श्रेणी पर दया करने तक ही सीमित है ? क्या बाकी जीव-जन्तुओं में परमात्मा की ज्योति नहीं ? क्या उनके अंदर दुःख-सुख अनुभव करने की चेतनता नहीं ?

इस सच्चाई से इन्कारी नहीं हुआ जा सकता कि बाकी के जीव-जन्तु भी मनुष्य की तरह पाँच तत्वों से बने हुए हैं तथा उनके अन्दर भी दुःख में ग़मी एवं सुख में ख़ुशी के जज़बे मनुष्य की तरह ही उत्पन्न होते हैं।

पशु-पंक्षियों को भी मनुष्य की तरह अपनी जान प्यारी होती है तथा उनको भी अपने बाल-बच्चे वैसे ही प्यारे हैं जैसे हमको। फिर गुरुवाणी को गुरु मानने वाला गुरसिक्ख, रसना के स्वाद हित क्यों जीवों की जान से खेलता है तथा गुरुवाणी के 'जीव-दया' के सिद्धान्त की उल्लंघना करता है ?

गुरुवाणी "दयालं सरबत्र जीआ" का पावन उपदेश दृढ़ करवाती है, क्योंकि समस्त जीवों में प्रभु की ज्योति प्रकाशवान है।

प्रभु के सरब-निवासी होने की सच्चाई वेद तथा कतेब भी अपने अपने अनुयायीयों के प्रति उजागर करते हैं। परन्तु ख़ुदग़रज़ी तथा चसके अधीन अंधा हुआ मनुष्य धर्म पुस्तकों द्वारा प्रचारे गए "घट घट वासी सरब निवासी"[१] के सिद्धान्त को आँखों से दूर रखकर जीवों का ख़ून करता है। इसमें धार्मिक पुस्तकों का क्या दोष ? यह कपटी मोमन मनुष्य जीवों को संहारने की झख तो मारता है अपने चसके हित, या विषय-भोग में लिप्त होने के कारण निर्बल हुई शारीरिक शक्ति को जीवों की शक्ति लूटकर पूरी करने हित, परन्तु अपनी मंद-करनी को 'हलाल' के पर्दे में छिपाने का यत्न करता है। गुरुवाणी ऐसे प्रपंची मनुष्य का खूब पाज उधाड़ती है :

बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै ॥
जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ,
तउ किउ मुरगी मारै ॥१॥
मुलां कहहु निआउ खुदाई ॥
तेरे मन का भरमु न जाई ॥१॥ रहाउ॥
पकरि जीउ आनिआ देह बिनासी,
माटी कउ बिसमिलि कीआ ॥
जोति सरूप अनाहत लागी,
कहु हलालु किआ कीआ ॥२॥
किआ उजू पाकु कीआ मुहु धोइआ,
किआ मसीति सिरु लाइआ ॥
जउ दिल महि कपटु निवाज गुजारहु,
किआ हज काबै जाइआ ॥३॥
तूं नापाकु पाकु नही सूझिआ,
तिस का मरमु न जानिआ ॥

---

१. सूही छंत मः ५, पन्ना ७८४.

कहि कबीर भिसति ते चूका,

दोजक सिउ मनु मानिआ ॥४॥४॥ *(प्रभाती कबीर जी, पन्ना १३५०)*

उपरोक्त शब्द द्वारा माँस खाने वाले व्यक्ति प्रति गुरुवाणी सीधे प्रश्न करती है :

(क) जब सब जीवों में ख़ुदा की हस्ती मानते हो तो फिर मुर्गी अथवा अन्य जीव क्यों मारते हो ?

(ख) जीवों के मिट्टी के शरीर को संहार कर कौन सी वस्तु हलाल की है ?

(ग) जब आपके दिल में कपट हो (चसके अधीन माँस खाकर फिर अपनी मंद-क्रिया को धर्म की आड़ में छुपाने का) तो फिर नमाज़ पढ़ने का क्या लाभ ?

इन प्रश्नों का माँस खाने वालों के पास क्या उत्तर है ? उपरोक्त शब्द के अन्त में फिर ऐसे व्यक्तियों की ज्ञानहीन हालत पर तरस खाकर समझाया है :

"हे अशरफ़ुल मख़लुकात (धरती के सिरदार) प्राणी ! अपने ऊँचे एवं पवित्र जीवन-निशाने से वंचित होकर तुमने लूटमार तथा ज़ोर-ज़ुल्म का ग़लत मार्ग अपनाया हुआ है। हे भले लोक ! पवित्रता के स्रोत अपने कर्ता पुरुष संग तुमने सांझ नहीं बनाई बल्कि दुष्टों वाले कर्म अपनाकर तुम ख़ुद दुष्ट बन गए हो और इस प्रकार स्वर्ग को छोड़कर तुमने दोज़क का मार्ग अपनाया हुआ है। यह क्यों ?"

माँस के चसकोरे भाईयों की ओर से झटके तथा कुठा (हलाल) संबंधी घड़ा गया छल भी अजीब है। एक ही जानवर अगर 'कलमा' पढ़कर मारा जाए तो हलाल (कुठा) बन जाता है और अगर 'सति स्री अकाल' बोलकर मारा जाए तो झटका बन जाता है। अजीब बात है कि वही माँस जो मुसलमानों के लिए हलाल अथवा खाने योग्य है, वह सिक्खों के लिए कुठा अथवा खाने योग्य नहीं है और जो सिक्खों के लिए झटका अथवा खाने योग्य है, वह मुसलमानों के लिए हराम है। इसका अर्थ यह हुआ कि निंदित वस्तु माँस नहीं बल्कि सिक्ख के लिए 'कलमा' है तथा मुसलमानों के लिए 'सति स्री अकाल'।

लेकिन यदि 'कलमा' तथा 'सति स्री अकाल' दो अलग अलग भाषायों में ईश्वरी कलाम हैं तो क्यों एक संप्रदा 'कलमे' से नफ़रत करती है और दूसरी 'सति स्री अकाल' से ? वास्तव में न तो 'कलमा' घृणित है और न ही 'सति स्री अकाल'। यदि कुछ घृणित तथा निंदित है तो वह है माँस-ख़ोरे

भाईयों द्वारा जीवों के संहार की क्रिया, जिसके पीछे ज़ुबान के स्वाद हित दूसरों का ख़ून करने की मंदी तथा स्वार्थी भावना छिपी होती है। भीतर की मंदी भावना तथा उसके अधीन किये मंदे-कर्म, मूँह से 'कलमा' पढ़ने या 'सति स्री अकाल' उच्चारण करने से कैसे शुद्ध हुए माने जा सकते हैं ? लेखा तो भीतरी भावना के आधार पर लिखा जाना है। गुरुवाणी का निर्णय है :

हरि हरि करहि नित कपटु कमावहि हिरदा सुधु न होई ॥

(सूही म: ४, पन्ना ७३२)

बेदु पड़ै मुखि मीठी बाणी ॥
जीआं कुहत न संगै पराणी ॥३॥१०७॥

(गउड़ी म: ५, पन्ना २०१)

निजी स्वार्थ हित दूसरे जीवों का ख़ून बहाना मंद-कर्म तथा विकार है। ज़ोर-ज़ुल्म का विकारी हुआ मन निर्मल कैसे हो सकता है ? फिर मन निर्मल हुए बिना नाम कैसे लिया जा सकता है ? इसीलिए तो गुरुवाणी का आदेश है :

नानक नाउ खुदाइ का दिलि हछै मुखि लेहु ॥
अवरि दिवाजे दुनी के झूठे अमल करेहु ॥१॥

(सलोक म: १, पन्ना १४०)

जप, तप, संयम आदि कर्म-धर्म मन को निर्मल करने हेतु ही किये जाते हैं। परन्तु यदि मन में कपट ही बना रहे तथा इस कपट के अधीन मनुष्य मंदे-कर्मों में लिप्त रहे तो फिर उसके धार्मिक कर्म तो एक दिखावा, फ़रेब तथा प्रपंच बनकर रह जाते हैं। ऐसे मनुष्यों की दशा हास्यास्पद हो जाती है। कबीर जी ऐसे दिखावे के पाखंडी जीवन पर अति कठोर कटाक्ष करते हैं :

जउ दिल महि कपटु निवाज गुजारहु,
किआ हज काबै जाइआ ॥३॥

(प्रभाती कबीर जी, पन्ना १३५०)

तभी तो गुर-उपदेश है कि :

अंतरि कपटु चुकावहु मेरे गुरसिखहु
निहकपट कमावहु हरि की हरि घाल.... ॥

(नट नाराइन म: ४, पन्ना ९७८)

मनुष्य का स्वभाव है कि पाप को छिपाने के लिए कपट का सहारा लेना। परन्तु यदि कोई मनुष्य पाप छिपाने का कपट न भी करे तो भी पाप का

मन में रहना मात्र ही मन को मलीन किये रखता है। पाप के रहते हुए मन कैसे निर्मल हो सकता है :

जे रतु लगै कपड़ै जामा होइ पलीतु ॥
जो रतु पीवहि माणसा तिन किउ निरमलु चीतु ॥

(वार माझ म: १, पन्ना १४०)

[यदि ख़ून का दाग़ मनुष्य के वस्त्र पर लग जाए तो पुशाक अपवित्र समझी जाती है। परन्तु जो मनुष्य (जानवरों को मारकर उनके माँस के रूप में) ख़ून पीते हैं, उनका हृदय कैसे पवित्र रह सकता है ?]

अर्थ करने के लिए इस पंक्ति का अनवै है—'जो माणसा रतु पीवहि' और शब्द 'माणसा' के उच्चारण में इसके अंतिम 'आ' का बिन्दी सहित उच्चारण करने की आवश्यकता नहीं। पर माँसाहारी सज्जन इस 'माणसा' शब्द को बिन्दी लगाकर 'माणसां' उच्चारण कर, यह अर्थ करते हैं—जो (मनुष्य) माणसों का ख़ून पीते हैं, भाव मनुष्यों पर जुल्म करते हैं। यह अर्थ मनघड़त तथा ज़बरदस्ती के हैं और दलील-युक्त नहीं हैं। दृष्टांत स्पष्ट है, कोई कठिनाई नहीं। कपड़े को ख़ून लगने से कपड़ा अपवित्र तथा जानवरों का ख़ून कर माँस खाने वालों का चित्त भी अपवित्र।

माँस खाने के पक्षपाती सज्जन उपरोक्त पंक्ति के ग़लत अर्थ कर अपने आप से तथा भोली भाली जनता से कितनी बेइन्साफी करते हैं। कोई पूछे कि मनुष्य जाति से की गई थोड़ी सी ज्यादती का अर्थ, उसका ख़ून पीना निकाला जाता है, लेकिन मनुष्य द्वारा बेचारे जानवरों का पूर्ण रक्त (उनके माँस के रूप में) पी जाने को भी आँखों से ओझल किया जाता है। पशुओं के प्रति ज़ोर-जुल्म मनुष्य अपनी बनाई हुई मनुष्य-सोसाइटी में चाहे करता रहे तथा करता हुआ भी मुनकर होता जाए, परन्तु प्रभु के दरबार में तो पूर्ण सत्य ही स्वीकार होगा।

इस नुक्ते संबंधी विचार समाप्त करने से पहले एक बात जो बहुत महत्वपूर्ण तथा दिलचस्प है, उसका वर्णन किये बिना बात अधूरी रहेगी। वह यह है कि आजकल के बुच्चड़ख़ानों में जब माँस बनाया जाता है तो उस समय न तो 'कलमा' पढ़ा जाता है और न ही 'सति स्री अकाल' उच्चारण किया जाता है। कसाईयों के मुँह में उस समय या तो गाली-गलोच होता है या गंदे-मंदे गाने, जो उनको आते हैं। मज़े की बात है कि हलाल व झटके का स्वै-कल्पित विकार ओझल कर माँसख़ोरे भाई सब कुछ हज़म कर जाते हैं। चलो ठीक है, यह पहले भी तो एक ढकोसला ही था।

दलील नं: ३

माँस खाने के पक्षधर भाई निम्नलिखित ऐतिहासिक हवाले अपने पक्ष में दिया करते हैं :

(क) *सूरज प्रकाश* में लिखा है कि श्री गुरु अंगद देव जी के लंगर में माँस परोसा जाता था।

(ख) श्री गुरु नानक देव जी ने कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण के समय एक राजकुमार द्वारा मारकर लाए हिरण का माँस पकवाया तथा वहां एकत्र हुए वैष्णव ब्राह्मणों के संग माँस के बारे में चर्चा की, जो श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज है।

(ग) गुरु महाराज शिकार खेलते रहे। यदि सिक्ख धर्म में माँस खाने की मनाही है तो फिर शिकार खेलने के क्या अर्थ ?

विचार

सिक्ख इतिहास में कुछ विरोधियों की ओर से तथा कुछ अनजान लिखारियों द्वारा बहुत शंकाएं मिलावट की गई मिलती हैं। भाई काहन सिंह जी नाभा ने अपनी पुस्तक *गुरमति मारतंड* की भूमिका में कुछ ऐसी शंकायों की उदाहरणें दी हैं जो हू-ब-हू निम्न दी जाती हैं :

> "साडे मत दे कविआं ने अनयमती ग्रंथ-कारां दी नकल करदे होए इह भारी भुल्ल कीती है कि समाज, नीती ते धरम आदिक दे विषय इकट्ठे कर के सब नूं मज़हबी रंगत दे दिती है। बिना छाण-बीण कीते अनेक प्रसंग अैसे लिखे हन, जो मूलों निरमूल अथवा गुरमति तों दूर लै जाण वाले हन।...इह सुभाविक गल्ल है कि जद असीं आपणे मत्त दे पुस्तकां विच विरोध देखदे हां तां मन भ्रम-चक्कर विच पै जांदा है अते सानू इह निरणा करना औखा होंदा है कि गुरमति दा सच्चा उपदेशक किहड़ा पुस्तक है, पर जदों असीं विचार-शकती तों कंम लैंदे हां अते...सतिगुरां दी स्री मुखवाक बाणी दी कसौटी नाल सब सिख मत्त दे पुसतकां दी प्रीखिआ कर के गुरबाणी दे नियमां तों विरुध वचनां दा तयाग अते अनकूल वचनां दा ग्रहिण करदे हां तां सारीआं कठनाईआं छिन विच मिट जांदीआं हन अते असीं गुरमति दा सिद्धा रसता लभ्भ लैंदे हां।"
>
> *[गुरमति मारतंड, पन्ना उ, अ]*

ऐसी विरोधी लिखतों के उदाहरण निम्न दिये जाते हैं :

(क) *गुरबिलास पातशाही छेवीं* के दूसरे अध्याय में लिखा है कि जब श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब को सीतला (चेचक) निकली, तब दुर्गा पूजन इस तरह किया गया :

ब्राहमण के परसाद दुरगा भई प्रसंन ।।
सपत दिवस बीतत भए ठंढी कहि सुख मंन ।।
पूजा नलेर सों दरब अपारा ।।
भेट खरी देवी दरबारा ।।
देवी की परिक्रमा कीनी ।।
देहुरे की अतिसै छबि चीनी ।। (७९)

भाई संतोख सिंह जी इसी प्रसंग की पुष्टि *गुरप्रताप सूर्य* की रास ३ के अंक १२ में करते हैं। लेकिन श्री गुरु हरिगोबिंद जी के पूज्य पिता गुरु अर्जन देव जी सीतला के संबंध में कुछ और लिखते हैं :

सदा सदा हरि जापे ।। प्रभ बालक राखे आपे ।।
सीतला ठाकि रहाई ।। बिघन गए हरि नाई ।।१।।

(सोरठि म: ५, पन्ना ६२७)
[गुरमति मारतंड, पन्ना क, ख, ग]

(ख) *स्री नानक प्रकाश* में लेख है कि गुरु नानक देव जी ने मरे हुए पूर्वजों का श्राध किया। यह वाक्य मानने योग्य नहीं है, क्योंकि गुरु जी स्वयं पाखंड रूप श्राद्ध-कर्म का खंडन करते हैं। यथा :

इक लोकी होरु छमिछरी ब्राहमणु वटि पिंडु खाइ ।।
नानक पिंडु बखसीस का कबहूं निखूटसि नाहि ।।४।।२।।

(आसा म: १, पन्ना ३५८)
[गुरमति मारतंड, पन्ना घ]

(ग) भाई सुखा सिंह ने *गुरबिलास* के १०वें अध्याय में दत्ता नन्द उज्जैन निवासी ब्राह्मण द्वारा दुर्गा का पूजन दशमेश जी से करवाया लिखा है :

यौं सुनि गद गद भयो क्रिपाला ।।
स्री मुखि सों कहि बचन बिसाला ।।
मैया! इहै क्रिपा अब कीजै ।।
खड़ग पाणि दाहनु मुहि दीजै ।।२६७।।.....
एव सतु कहि मात भवानी ।।
वर दै भई लोप जग रानी ।। (२७१)

महिमा प्रकाश की पच्चीसवीं साखी में भी ऐसे ही लिखा है :

करा होम सतिगुरु पुरख माता भई प्रसंन ।।
भइआ प्रकास माता प्रगट धंन मात जग धंन ।। (३२)

गुरप्रताप सूर्य की रुत ३, अंक ४ में भी इसी प्रकार लिखा है। *गुर पद प्रेम प्रकाश* में बाबा सुमेर सिंह लिखते हैं :

महा बीर स्री हनूंमान जी प्रगट कच्छ तब दीनी ।।
लीजै महाराज मम भेटा मरयादा अति चीनी ।।

[गुरमति मारतंड, पन्ना च, छ, ज, झ]

(घ) *गुरबिलास पातिशाही छेवीं* के अध्याय १८ में गुरु हरिगोबिंद जी का भांग पीना लिखा है :

जबै जाम दिन आनि रहायो ।।
स्री गुरु बिजीआ पान करायो ।।

(ङ) भाई सुखा सिंह *गुरबिलास पातशाही दसवीं* के १०वें तथा १६वें अध्याय में लिखते हैं कि गुरु गोबिन्द सिंह जी अमल करते थे और करवाते थे :

बिजीआ धरछत अमल मंगावे ।।
आप छकै पुनि अवर दिआवै ।। (धरछत—अफ़ीम)

मदिरा बिजीआ खांड मिलाई ।।
चरनामित्र मिल गागर पाई ।। (मदिरा—शराब)
ले निज भेट कालिका दीने ।।
जै भवानी की उचर प्रबीनै ।। (१३७)

(च) *गुरप्रताप सूर्य* की रुत ३, अध्याय ४ में लिखा है :

अधिकै सुगंध महकार संग ।।
बहु रगड़ बदामन सहित भंग ।।
एला लवंग मिरचान कारि ।।
मेलयो गुलाब युत सरद बारि ।। (७)
युत छत्रधार सतिगुरु छकाइ ।। (८) (छत्रधार—अफ़ीम)

(छ) फिर रुत ३, अध्याय २१ में भाई संतोख सिंह लिखते हैं कि दशमेश जी ने कहा :

यां ते स्री मुखबाक उचारा ।।
हुइ सुखे की देग उदारा ।।
सिंघ होइ जब आयुध धारी ।।
मादक चाहीअत अनंद मझारी ।। (३९)
सब मादिक ते बिजीआ आछी ।।
कयोकि महेश आदि इह बाछी ।। (४)

(ज) *विमल बिबेक वारधि* में भगवान सिंह रहितनामिया, चैनपुर भभूआ से क्षत्रिय सिंघों के घरों से प्राप्त हुए रहितनामे के वाक्य लिखता है :

अचीआ सुख्खा छत्तरधार ।। रन में जूझै अपर अपार ।।

फिर भाई मनी सिंह जी का हवाला देकर लिखा है :

"गुरू जी सब संगत को अमृत छका कर, शस्त्र पकड़ा कर सिंघ सजा विदा करा, तां सिक्खों नूं कहिआ जो तुसीं कुछ अमल छकिआ करो, तां सिक्ख अमल खाने लग्गे तां कितनिआं दी बिरतीयां ठहर गईआं।"

नोट**:** वृति ठहराने का कैसा सुन्दर उपाय बताया है! सिक्खों की वृति, सेवा, गुरुवाणी के अभ्यास, परोपकार, शस्त्र तथा शास्त्र के अभ्यास से ठहरती है, न कि नशे में डूबकर उल्लू बनने से। *[गुरमति मारतंड, पन्ना ङ, ट, ठ]*

उपरोक्त उदाहरणें टूक मात्र हैं। अधिक उदाहरण देने से अपना ही पेट नग्न होता है। इतिहास में यह मिलावट विरोधियों अथवा गुरु-वैरियों द्वारा जानबूझ कर की गई। पिछले कुछ इतिहासकारों द्वारा ऐसी मिलावटों को विवेक-बुद्धि से परखने तथा अलग करने की बजाए मक्खी पे मक्खी मारी हुई है। संभव है इनमें से कुछ इतिहासकार निजी तौर पर इस नशे के सेवन आदि की बुरी आदत में स्वयं ही ग्रस्त हों। कुछ भी हो, उपरोक्त प्रकार की लिखतें गुरमति सिद्धान्त के विरुद्ध हैं तथा सिक्ख इतिहास को हास्यास्पद तथा भरोसे योग्य नहीं रहने देतीं।

इसलिए इतिहास को गुरमति की कसौटी पर खोज-पड़ताल के पश्चात् इसमें संशोधन की आवश्यक्ता है। पंथ-दर्दी बहुत पहले से इस आवश्यक्ता को महसूस कर रहे हैं तथा उनके द्वारा इस मांग पर कई बार प्रैस तथा अन्य प्लैटफार्म के माध्यम द्वारा दोनों बाजू ऊचें कर पुकार की जा चुकी है। जहां जहां कोई भी ऐतिहासिक घटना या रचना गुरुवाणी में अंकित सिद्धान्तों से टकराती है, उसका भली प्रकार निरीक्षण कर गुरुवाणी की रोशनी में स्पष्ट करने या शोध करने की आवश्यक्ता है।

इस प्रकार उपरोक्त झूठे ऐतिहासिक कथनों के समक्ष माँस खाने वालों के ऐतिहासिक हवालों को कैसे प्रामाणिक माना जा सकता है। एक तो वे गुरुवाणी में दर्शाये गए 'जीव-दया' के सिद्धान्त से टकराते हैं, तो दूसरी ओर इन्हीं ऐतिहासिक ग्रंथों में कुछ ऐतिहासिक हवालों का भी विरोध करते हैं, जिन्हों द्वारा माँस खाने को वर्जित कर जीव-दया की प्रेरणा की गई है। उनमें से कुछ उदाहरण निम्न दिये जाते हैं :

देवलूत नामी राक्षस को गुरु नानक देव जी का उपदेश

प्रिथम तजहु आमिख (माँस) को खाना ॥
करहु जास हित जीवन हाना ॥ ७॥.....
केतिक दिन तहि रहे गुसाई ॥
गुरु सिखी की रीति चलाई ॥
सभि राखश को नाम जपायो ॥
आमिख खान तिनहि तजवायो ॥ (१८)
सुधर सैन जो भूप महाना ॥
देवलूत मानहु तिह आना ॥
हिंसा नही जीव की कीजै ॥
सतिगुर जाप जपहु दुख छीजै ॥ (२०)

(स्री गुर नानक प्रकाश पूरबारध, अध्याय ४४)

मक्के की गोष्टि

गऊ भैस अते मुरगाईयां जो, होइ हैवान गरीब ॥
तह पर छुरी हराम है, खावन तिना पलीत ॥...
जो बिचारे जानवर, मारन तिना रवाल ॥
बिना रजाइ खुदाइ दी, तिह पर छुरी ज़वाल ॥
मुई शै मुरदार है, सहिके जान कवाइ ॥
खाणी इह हराम है, तिह पर छुरी रवाइ ॥
खाणा मास गुनाह है, जोरी कीआ हलाल ॥
ज़ोरी कुठा हराम है, तिस ते होइ ज़वाल ॥

(जन्म साखी भाई बाला)

शीहें उप्पल को उपदेश

शीहें उप्पल को १०० बकरे ले जाते देखकर गुरु अंगद देव जी ने

इसका कारण पूछा तो उसने बताया कि मेरे बेटे का मुंडन है, तो इस ख़ुशी के समय लोक-रीति के अनुसार आए महमानों को माँस-भोजन खिला कर प्रसन्न करना है । श्री गुरु जी ने आदेश किया :

इतने जीवन हिंसा करै ।।
पाप बिसाल आपन सिर धरै ।।७।।
अब तो सुगम जानीअहि करिबो ।।
अंत महा दुख नरकन परबो ।।
देहिं सासना जम के दूत ।।
तहा न पहुंचे बंधप पूत ।।८।।
जिन हेत अघ करम कमाइ ।।
तहा न रंचक होइ सहाइ ।।
सुख भोगेगे सगरे लोक ।।
अपदा परहि तोहि बड सोक ।।९।।
धरम राइ जब करि है लेखा ।।
लहै महा दुख रहै न सेखा ।।
स्री गुरू कहा करो उपचार ।।
जिस ते होइ न जीव संघार ।।

(गुरप्रताप सूरज ग्रंथ, रास १, अंस २६)

श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी के हुक्मनामे

हुक्मनामा नं: ६, पन्ना १२

करतार करतार वाचणी । गुरू तुसाडी लजर-
खैगा गुरू गुरू जपणा जनम सवरू संग-
त दी कामना गुरू पूरी करेंगे संगती दारु-
जगारु होगा इक दासी रहिणा[1] **मास मच्छी दे नेड़े**
नही आवणा संगत दी चीरी पहुती हकीकत सभ
मलूम होई संगत सरबति इकम[2] जु-
ति हहे तिवे रहणा जापे गुरुदास नाल लग रह-
णा कारवार इना नो देंदिआ रहणा संगति उप-
रि गुरू दी खरी खुसी हइ संगती दा रुजगारु हो-

---

१. एक दूसरे के दास बनकर निम्रता से रहना ।
२. एकता, इत्तफ़ाक ।

ग संगती आप विचि इकतु[1] करणा संग-
ती दी खरी खुसी गुरू दीना दे होंदे हइ सभ मेरे
पुत हैनि सभना इकते जीऔ होणा
अगे कारवार लेदी हथ लिख भेजा हइ ओह
सभा कार करि भेजणी। इलाइचे मन (मण) दह.....

हुक्मनामा नं: ९, पन्ना १५

भाई जापू भाई गुरदासु भाई मुरारि भाई जाति भाई दिआला
गुरू गुरू जपणा जनम सवरू संगत दी कामना पूरी होगु
संगती दा रुजगार होग संगती की कार जु लेहागा गुरू दी आ-
गिआ हइ कीरतन करणा इक दासु भली जुगति रहणा **मास
मछी दे नेड़े नाही आवणा** पूरब दी संगति गुरू दा खालसा
हइ उपरंति गुरू दी आगिआ हइ भाई जापू भाई गुरदास तुसां स-
भनां रल के सारे पूरब दी कार करणी...।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी का भाई साहिब दया सिंह जी प्रति उपदेश, जिसका हवाला *सुधरम मारग ग्रंथ* में आया है :

पंज करम न करै सो जीवन-मुकत है :

(१) धन पराइआ न हरै। (२) इसत्री न सेवै।
(३) निंदा न करै। (४) जूआ न खेलै।
(५) मद मास खाय नाही।

ऐसा वर्णन पुरातन हाथ-लिखित बीड़ों में भी मिलता है।

माँस खाने के सिलसिले में जो क्रिया गुरमति विरोधी है, वह है जीवों पर जुल्म करना। लब-लोभ के अधीन किसी भी जीव पर ज़ोर-जुल्म करना हिंसक रुचि का प्रतीक है। इसमें कोई दो राय नहीं कि गुरुवाणी जिज्ञासु को हिंसा से रोकती है तथा जीव-दया का उपदेश देती है। इस संबंध में अनेक प्रमाण पिछले कांड में दिये गए हैं।

इतिहास में किसी लिखारी ने यह लिख मारा कि गुरु अंगद देव जी के लंगर में मछली-माँस का प्रयोग होता था। इससे पहले पन्ना ३८ पर ऐतिहासिक हवाला दर्ज किया गया है, जिससे श्री गुरु अंगद देव जी द्वारा शीहें उप्पल को जीव-हत्या से रोकना सिद्ध होता है तथा उसको दृड़ कराया गया है कि जीव-हत्या करना पाप-कर्म है, जिसकी जवाबदेही आगे करनी पड़ेगी।

१. मिलाप।

बहुत हैरानी की बात है कि किसी मनचले लिखारी ने श्री गुरु अंगद देव जी के लंगर में माँस परोसा जाना लिख दिया है। भाई सत्ता तथा भाई बलवंड श्री गुरु अंगद देव जी के दरबार में ढाडी (गायक) थे। उन्होंने अपनी वार में, जो कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब के राग 'रामकली' में अंकित है, श्री गुरु अंगद देव जी के लंगर में वितरित किये जाने वाले महत्वपूर्ण पदार्थों का दो बार वर्णन किया है :

(क) **लंगरि दउलति वंडीऐ रसु अंम्रितु खीरि घिआली ॥**

(वार रामकली बलवंडि तथा सतै की, पन्ना ९६७)

(ख) **नित रसोई तेरीऐ घिउ मैदा खाणु ॥**

(वार रामकली बलवंडि तथा सतै की, पन्ना ९६८)

गुरु घर के समकाली तथा दरबारी ढाडियों (गायकों) द्वारा उच्चारण की गई वाणी, जो स्वीकार कर श्री गुरु ग्रंथ साहिब में शामिल की गई है, की गवाही के आधार पर दावे से कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक लिखित में किसी गुरु-दोखी या विरोधी ने या किसी माँसाहारी लिखारी ने शेख़ी मारकर सिक्ख-सिद्धान्त में मिलावट करने की सोची समझी साज़िश की है। ऐतिहासिक ग्रंथों में कहीं माँस खाने के पक्ष में तो कहीं विरोध में स्वै-विरोधी उल्लेख हैं, जो सिक्ख इतिहास अथवा सिक्ख धर्म को हास्यास्पद रूप में पेश करते हैं।

गुरु नानक देव जी द्वारा कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण के मेले में किसी राजकुमार द्वारा मारे गए हिरण को पकवाए जाने की घटना का वर्णन भी माँसाहारी भाई अपने पक्ष की पुष्टि के लिए करते हैं।

विस्मादी कौतिकों वाले चोजी सतिगुरु जी के इस चोज-विनोदी कौतक की गति-मिति स्वयं ही जाने, लेकिन इस रहस्य को समझने के लिए उस वाणी की अन्तरीव गवाही भरोसे योग्य है, जो उस समय उच्चारण की गई और श्री गुरु ग्रंथ साहिब में अंकित है, वह इस प्रकार है :

सलोक मः १ ॥
पहिलां मासहु निंमिआ मासै अंदरि वासु ॥
जीउ पाइ मासु मुहि मिलिआ हडु चंमु तनु मासु ॥
मासहु बाहरि कढिआ मंमा मासु गिरासु ॥
मुहु मासै का जीभ मासै की मासै अंदरि सासु ॥
वडा होआ वीआहिआ घरि लै आइआ मासु ॥
मासहु ही मासु ऊपजै मासहु सभो साकु ॥

सतिगुरि मिलिए हुकमु बुझीऐ तां को आवै रासि ॥
आपि छुटे नह छूटीऐ नानक बचनि बिणासु ॥१॥
मः १॥
मासु मासु करि मूरखु झगड़े गिआनु धिआनु नही जाणै ॥
कउणु मासु कउणु सागु कहावै किसु महि पाप समाणे ॥
गैंडा मारि होम जग कीए देवतिआ की बाणे ॥
मासु छोडि बैसि नकु पकड़हि राती माणस खाणे ॥
फड़ु करि लोकां नो दिखलावहि गिआनु धिआनु नही सूझै ॥
नानक अंधे सिउ किआ कहीऐ कहै न कहिआ बूझै ॥
अंधा सोइ जि अंधु कमावै तिसु रिदै सि लोचन नाही ॥
मात पिता की रकतु निपंने मछी मासु न खांही ॥
इसत्री पुरखै जां निसि मेला ओथै मंधु कमाही ॥
मासहु निंमे मासहु जंमे हम मासै के भांडे ॥
गिआनु धिआनु कछु सूझै नाही चतुरु कहावै पांडे ॥
बाहर का मासु मंदा सुआमी घर का मासु चंगेरा ॥
जीअ जंत सभि मासहु होए जीइ लइआ वासेरा ॥
अभखु भखहि भखु तजि छोडहि अंधु गुरू जिन केरा ॥
मासहु निंमे मासहु जंमे हम मासै के भांडे ॥
गिआनु धिआनु कछु सूझै नाही चतुरु कहावै पांडे ॥
मासु पुराणी मासु कतेबी चहु जुगि मासु कमाणा ॥
जजि काजि वीआहि सुहावै ओथै मासु समाणा ॥
इसत्री पुरख निपजहि मासहु पातिसाह सुलतानां ॥
जे ओइ दिसहि नरकि जांदे तां उन्ह का दानु न लैणा ॥
देंदा नरकि सुरगि लैदे देखहु एहु धिङाणा ॥
आपि न बूझै लोक बुझाए पांडे खरा सिआणा ॥
पांडे तू जाणै ही नाही किथहु मासु उपंना ॥
तोइअहु अंनु कमादु कपाहां तोइअहु त्रिभवणु गंना ॥
तोआ आखै हउ बहु बिधि हछा तोऐ बहुतु बिकारा ॥
एते रस छोडि हो[illegible]ंनिआसी नानकु कहै विचारा ॥२॥

(वार मलार की मः १, पन्ना १२८९-९०)

उपरोक्त श्लोकों को ध्यानपूर्वक विचारने से स्पष्ट हो जाता है कि जीवों को मारकर माँस खाने की पुष्टि नहीं होती। श्लोकों में वर्णन किये गए सिद्धान्तिक नुक्तों का सारांश इस प्रकार है :

(१) माँस के नाम-मात्र से ही छी-छी करना तथा मलीन मानना फ़जूल है। मनुष्य का शरीर पूर्णत्य माँस है। इसकी उत्पत्ति माँस (रक्त-बिन्द) से हुई है। इसके सभी अंग माँस के ही हैं।

(२) माँ के गर्भ में मनुष्य के शरीर की बनावट बनते समय से लेकर इस शरीर का अन्त होने तक माँस कई रूपों में शरीर की भीतरी तथा बाहरी क्रिया चलाने हेतु प्रयोग में आता है, जैसे—माँ का उदर (जहां नौ माह जीव को निवास मिलता है), नाभी (जिस द्वारा मां के पेट में ख़ुराक मिलती है), मम्मा (स्तन—माँ का दूध चूसने हित), मुँह, जीभ आदि। फिर बड़े होने पर इस का संयोग माँस (स्त्री) संग होता है, जिस द्वारा माँस (बच्चा) पैदा होता है।

टिप्पणी

जिस प्रकार के माँस का ऊपर उल्लेख किया गया है वह निरसंदेह है तो माँस, लेकिन ऐसा माँस जीवन-क्रिया चलाने हेतु साधन (Instrument) के रूप में प्रयोग में आता है। उसमें ज़ोर-ज़ुल्म तथा पाप-कर्म की कोई क्रिया नहीं होती। सब जानते हैं कि रक्त-बिन्द, माता का उदर, नाभी, मम्मा (स्तन), मुँह, जीभ, स्त्री, पुत्र, पुत्रियां, जिनके संग मनुष्य का अलग अलग समय जीवन-पर्यंत संबंध रहता है, सभी माँस के हैं, लेकिन क्या कोई इस प्रकार के माँस को खाता है ? इसी तरह श्लोक का प्रयोजन भी वैष्णव पाँडों के अन्दर की माँस के नाम-मात्र से घृणा को दूर करना ही है। साथ ही सच्चाई प्रकट की है कि माँस से छुटकारा अपने यत्नों या उक्तियों से संभव नहीं। सतिगुरु जी के मिलाप के कारण हुक्म बूझने से जीवन-यात्रा सफल होती है तथा माँस (शरीर बार बार धारण करने तथा आवागवन के चक्कर में पड़े रहने) से छुटकारा मिलता है।

(३) असली ज्ञान, ध्यान तथा गूढ़ रहस्य को समझे बिना माँस संबंधी झगड़ा करना सिर्फ़ मूर्खता है। सतिगुरु जी के ज्ञान के बिना यह समझ आ ही नहीं सकता कि कौन सी वस्तु माँस है तथा कौन सी साग, तथा इनमें से किसके सेवन से मनुष्य पापों का भागी बनता है।

टिप्पणी

अपने मूल रूप में न माँस निंदित है और न ही साग। यदि कुछ निंदनीय है तो वह है माँस या साग की प्राप्ति के लिए ज़ोर-ज़ुल्म तथा

अयोग्य-साधनों का किया गया प्रयोग, तथा इसके पीछे काम कर रही लोभ-लालच की मन्द-भावना, जो पाप का मूल कारण है। रिश्वत तथा लूटमार की कमाई द्वारा प्राप्त किया साग, जो ब़ेशक सात्विक भोजन है, भी निरसंदेह घृणित तथा निंदनीय है।

हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ ॥

(वार माझ म: १, पन्ना १४१)

बहु परपंच करि पर धनु लिआवै ॥
सुत दारा पहि आनि लुटावै ॥ *(सोरठि कबीर जी, पन्ना ६५६)*

खुसि खुसि लैदा वसतु पराई ॥
वेखै सुणे तैरै नालि खुदाई ॥ *(मारू म: ५, पन्ना १०२०)*

गुरु बाबा जी ने मल्लिक भागो के माल्-पूड़े (जो चाहे सात्विक भोजन था) इसलिए अंगीकार करने से इन्कार किया था क्योंकि वह गरीब जनता पर ज़ुल्म तथा लूटमार कर प्राप्त किये धन-पदार्थों से तैयार किये गए थे। गुरु बाबा जी ने अपने कला कृश्मी कौतक द्वारा उनमें से प्रत्यक्ष लहू निकाल कर दिखाया था। जीवों को माँस खाने हेतु काटने पर तो प्रत्यक्ष ही उनका ख़ून बहता है तथा ज़ोर-जुल्म प्रयोग किया जाता है। यह कर्म आवश्य बुरा है तथा पाप का मूल है। गुरुवाणी का आदेश है :

असंख गलवढ हतिआ कमाहि ॥
असंख पापी पापु करि जाहि ॥१८॥ *(जपु जी साहिब)*

(४) केवल माँस न खाने से कोई व्यक्ति पवित्र या धर्मी नहीं हो सकता।

टिप्पणी

धर्म धारण करने से ही मनुष्य धर्मी बनता है, केवल फ़ोकट कर्म-काँड करने या कुछ पदार्थों के सेवन के त्याग से नहीं। धर्म की परिभाषा बहुत विशाल तथा गहरी है, लेकिन मूल रूप में ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखकर उसमें लीन होने हेतु, नाम स्मरण करना धर्म कमाना है।

सरब धरम महि स्रेसट धरमु ॥
हरि को नामु जपि निरमल करमु ॥

(गउड़ी सुखमनी म: ५, पन्ना २६६)

नाम जपना धर्म-कर्म है, तथा केवल यह ही निर्मल कर्म है। दैवी गुण, सत्य, संतोष, दया, वैराग्य, त्याग, सद-भावना अत्यन्त ज़रूरी मानवी शुभ गुण हैं। नाम के संग यह स्मस्त गुण शोभा पाते हैं, जैसे बारात दूल्हे संग। तथा ये गुण नाम-स्मरण से स्वभाविक ही उत्पन्न होते हैं। परन्तु नाम-स्मरण के बिना इनकी कोई विशेषता नहीं रह जाती। उपरोक्त गुणों में से किसी एक या अधिक का धारण कर लेना मुबारिक है, परन्तु मनुष्य पूर्ण रूप में धर्मी तभी बन सकता है यदि नाम-स्मरण का सर्वोत्तम कर्म संग हो। नाम-स्मरण के बिना यह दैवी गुण दिखावा तथा प्रपंच बनकर रह जाते हैं। शून्य यदि किसी संख्या के साथ लगाये जायें तो इनकी बहुत महत्ता होती है। लेकिन संख्या के बिना ये शून्य शून्य ही होते हैं :

हरि बिनु अवर क्रिआ बिरथे ॥
जय तप संजम करम कमाणे इहि ओरै मूसे ॥१॥ रहाउ ॥
बरत नेम संजम महि रहता तिन का आढु न पाइआ ॥
आगै चलणु अउरु है भाई ऊंहा कामि न आइआ ॥१॥

(रागु गउड़ी म: ५, पन्ना २१६)

पवित्रता का श्रोत केवल प्रभु का नाम ही है। नाम के बिना मनुष्य कर्म-काँड करता हुआ भी अपवित्र ही रहता है। फिर यदि कोई रक्त-बिन्द से पैदा हुआ अपवित्र पुतला यह डींग मारे कि वह मछली माँस न खाने के कारण निर्मल है या धर्मी है तो उसका यह दावा मिथ्या ही है।

(५) एक ओर माँस खाने से त्याग का दिखावा करना तथा दूसरी ओर देवतायों की प्रसन्नता लेने हित गैंडा आदि जीव मारकर होम यज्ञ करने तथा इसके साथ ही रात-बराते लुक-छिपकर समूचे मनुष्यों को हड़प जाना प्रपंच नहीं तो और क्या है ?

(६) स्त्री पुरुष, राजे महाराजे सभी माँस से पैदा हुए हैं तथा पूर्णता माँस ही हैं। यदि माँस बुरी वस्तु है तो वे माँस के पुतले आवश्य नर्कों के भागीदार होंगे। तो फिर ऐसे व्यक्ति के दान पर पलने वाले टुक्कड़-बोच पाँडे कैसे स्वर्ग जाने की आशा कर सकते हैं ?

(७) सभी पदार्थ पानी से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सभी पदार्थों का मूल आधार पानी ही माना जाता है। जल में जीवन-सत्ता है तथा इस प्रकार

जल प्रशंसा-योग्य वस्तु है, तथा जल से उत्पन्न सभी पदार्थ भी प्रशंसा-योग्य हैं। परन्तु यदि जीवन के लिए निर्वाह मात्र सेवन करने की बजाए इन पदार्थों को चसके अधीन निःसंकोच मात्रा में सेवन किया जाए तो ऐसा करने से शरीर विकसित होने की बजाए पीड़ित होता है तथा रोग का विकारी हो जाता है। इसलिए रसों-कसों के चसकों से निरलिप्त होकर तथा नाम पर आश्रित होने से ही कोई मनुष्य आदर्शक माना जा सकता है।

इस तरह स्पष्ट है कि इस शब्द में वैष्णव पांडों के माँस के नाम-मात्र से अपवित्र हो जाने के भ्रम का निवारण किया गया है तथा पांडों की परस्पर विरोधी मनौतियों तथा क्रियायों का भाँडा फोड़ा गया है। हमारे माँसाहारी भाईयों द्वारा जीव-हत्या कर माँस खाने के हक्क में इस शब्द का हवाला पेश करना बिलकुल निराधार है।

इतिहास में सतिगुरुयों के द्वारा शिकार किये जाने संबंधी कुछ साखियां लिखी मिलती हैं। माँसाहारी भाई माँस खाने की पुष्टि के लिए इन साखियों की आड़ लेते हैं, परन्तु इन साखियों को गहराई से विचार करने से जो रहस्य उघड़ता है, उससे स्पष्ट होता है कि सतिगुरु जी का शिकार खेलना माँस खाने हित नहीं था बल्कि इसका सही मंतव कुछ और था :

(१) शस्त्र अभ्यास करना।
(२) भयानक जानवरों—शेर, चीते, भालू आदि से लोगों को छुटकारा दिलवाना।
(३) पूर्व-काल में उत्तराधिकारी सतिगुरुयों या गुरसिक्खों द्वारा हुए स्वभाविक वचनों अनुसार जानवरों की जूनियों में पड़े कुछ जीवों का उद्धार करना।

शिकार संबंधी इतिहास में आई समूह साखियों में उपरोक्त वर्णित तथ्यों में कोई एक तथ्य प्रकट होता है। यहां एक बात विशेष रूप में वर्णन करने योग्य है कि करुणा-मूर्ति सतिगुरु हरिराय साहिब भी शिकार करते रहे थे। आपका हुक्म था कि किसी जानवर को मारना नहीं। शिकार करने के बहाने निर्बल रोगी तथा ज़ख़मी जानवरों को जीवित पकड़कर लाया जाता और कुछ दिन उनकी दवा-दारू तथा सेवा-संभाल कर फिर जंगल में छोड़ दिया जाता। ऐसा शिकार किसी लोभ-लालच के लिए नहीं बल्कि परोपकार हित किया जाता था।

माँसाहारी भाई माँस खाने के पक्ष में एक दलील दिया करते हैं कि जानवरों की तरह गेहूँ के दानों में भी तो जीव हैं, इसलिए माँस खाने में तथा गेहूँ-भोजन खाने में कोई अन्तर नहीं।

विचार

ज़रा गहरी दृष्टि तथा साफ़ नीयत से देखें तो अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

चेतन जीव (Active Life) और
जीवन सत्ता (Energy for Life) में अन्तर

समूह उत्पत्ति को मूल रूप में दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है : चेतन तथा जड़। चेतन श्रेणी में मनुष्य, पशु तथा पक्षी आदि समूह जीव-जन्तु आ जाते हैं, जिनके अन्दर अनुभव करने तथा मनोभाव प्रकट करने की शक्ति है। पदार्थ आदि जड़ श्रेणियों में आते हैं। दोनों श्रेणियों में अन्तर स्पष्ट है।

ज़रा और सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि समूह उत्पत्ति चार स्रोतों (खाणियों) द्वारा वजूद में आती है :

(क) अंडज (अण्डों द्वारा)
(ख) जेरज (जेर द्वारा)
(ग) स्वेदज (गंदगी द्वारा)
(घ) उद्‌भुज (धरती की उपज)

पहली तीन श्रेणियों द्वारा हुई उत्पत्ति में जीव चेतन रूप में होता है, परन्तु चौथी श्रेणी (उद्‌भुज) द्वारा हुई उत्पत्ति में चेतन-जीव के स्थान पर जीवन-तत्व होता है। चेतन-जीव तथा जीवन-तत्व में बहुत अन्तर है।

जहां गेहूँ-दाने खाने हेतु पीसे जाते हैं, उसको आटा चक्की या फलोर-मिल कहा जाता है, परन्तु जहां जानवरों को काटकर खाने के लिए माँस बनाया जाता है उसे बुच्चड़ख़ाना (Slaughter House) कहा जाता है। इसका मुख्य कारण है। जानवरों में चेतन-जीव (Active Life) है तथा गेहूँ-दाने में जीवन-सत्ता (Energy for Life)। गेहूँ-भोजन मनुष्य का प्राकृतिक आहार है, जो विधाता की ओर से प्रदान किया गया है।

प्रवृत्ति में निवृत्ति

मनुष्य जैसे ही माँ के गर्भ से बाहर आता है तो उसकी माँ की छाती में

प्राकृतिक रूप में दूध प्रवेश करता है। यह दूध विधाता द्वारा पहुँचाया मनुष्य का कुदरती आहार है। दूध में निःसंदेह कीटाणू हैं। परन्तु क्या दूध पीने से मनुष्य पैदा होते ही दोषी (Born Criminal) बन जाता है ? कत्तई नहीं। इस प्राकृतिक आहार (रिज़क) के कारण मनुष्य दोषी नहीं बनता। कुछ खाये बिना जीवन कैसे स्थिर रह सकता है ? गुरुवाणी का आदेश है :

पहिलो दे तैं रिजकु समाहा ॥
पिछो दे तैं जंतु उपाहा ॥६॥ *(माझ म: ५, पन्ना १३०)*

विधाता ने गेहूँ-आहार (रिज़क) पहुँचाया है खाने के लिए। खाना है, जीवित रहने के लिए तथा जीवित रहना है नाम स्मरण हेतु। जैसे जैसे बच्चा बड़ा होता है, माँ की छाती में दूध कम होने लगता है। फिर बच्चे को प्रकृति की ओर से दाँत मिलते हैं कुछ खाने हेतु। खाना क्या है ? प्राकृतिक आहार, अर्थात रिज़क तथा मनुष्य का प्राकृतिक आहार अथवा रिज़क है—गेहूँ-भोजन :

आदि पुरख ते होइ अनादि ॥
जपीऐ नामु अंन कै सादि ॥१॥ रहाउ ॥

(गोंड कबीर जी, पन्ना ८७३)

सिक्ख धर्म निवृत्ति का मार्ग नहीं। परन्तु प्रवृत्ति भी योग्य सीमा तक धारण करने का ही विधान है। इस (प्रवृत्ति) में खचित होकर अपने जीवन-उद्देश्य तथा मानव कर्त्तव्यों को भूल जाना विकार है। गेहूँ-भोजन का त्याग करना निवृत्ति कर्म है, तथा यह गुरमति-विरोधी कर्म है। गुरुवाणी का आदेश है :

अंनै बाहरि जो नर होवहि ॥
तीनि भवन महि अपनी खोवहि ॥२॥
छोडहि अंनु करहि पाखंड ॥
ना सोहागनि ना ओहि रंड ॥३॥ *(गोंड कबीर जी, पन्ना ८७३)*

नाम जपने हेतु शरीर की पालना करना, गुरुवाणी के आदेशों अनुसार ज़रूरी है :

घटि वसहि चरणारबिंद रसना जपै गुपाल ॥
नानक सो प्रभु सिमरीऐ तिसु देही कउ पालि ॥२॥ (१४)

(वार बिहागड़ा म: ५, पन्ना ५५४)

परन्तु देही के पालने की आड़ लेकर रसों कसों में खचित हो जाना

तथा रसना के स्वाद हित या शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लालच अधीन जीवों का संहार करना प्रवृत्ति में खचित होना है। गेहूँ-भोजन का त्याग निवृत्ति कर्म है तथा माँस-भोजन प्रवृत्ति में खचित कर्म। दोनों अत्तवादी (Extremist) कर्म हैं। यह दोनों गुरमति विरोधी कर्म हैं। प्रवृत्ति में निवृत्ति का धारणी होना, गुरमति की स्थापित निर्मल जीवन-जुगति है।

निर्मल जीवन-जुगति

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार पाँच प्रबल मानसिक भावनाएं हैं, जो मनुष्य की निजी तथा सामाजिक उन्नति के लिए अति ज़रूरी हैं। जितनी देर तक यह योग्य सीमा में रहते हैं, उतनी देर तक यह समूची प्रगति में सहायक होते हैं तथा कुदरत का अमोलक वरदान सिद्ध होते हैं। गुरुवाक्य है :

कामु क्रोधु दुइ करहु बसोले गोडहु धरती भाई ॥
जिउ गोडहु तिउ तुम्ह सुख पावहु किरतु न मेटिआ जाई ॥३॥

(बसंतु म: १, पन्ना ११७१)

परन्तु जब यह योग्य सीमा से बढ़ जायें तथा काबू से बाहर हो जायें अर्थात मनुष्य इनके चसकों में खचित हो जाये तो यह विकार बन जाते हैं तथा इन द्वारा मनुष्य की शोभा तथा शक्ति का संहार होता है :

कामु क्रोधु काइआ कउ गालै ॥
जिउ कंचन सोहागा ढालै ॥

(रामकली म: १, दखणी ओअंकारु, पन्ना ९३२)

यह बहुत सूक्षम नुकता है, जिसको समझने से जीवन आनन्दमय हो जाता है तथा न समझने से जीवन विकारी, रोगी तथा दु:खी हो जाता है।

वैदिक विचारधारा अनुसार रोग क्या है ? किसी तत्व का शरीर में योग्य-मात्रा से घटना या बढ़ना, चाहे वह कितना ही महत्वपूर्ण तत्व क्यों न हो। उदाहरण के लिए तेज़ाबी मादे का योग्य-मात्रा तक रहना ख़ुराक को हज़म करने तथा उसे लहू तथा वीरज में परिवर्तित करने में सहायक होता है परन्तु इसका योग्य-मात्रा से घट जाना या बढ़ जाना एक रोग है।

परिणाम यह है कि जीवन व्यतीत करने के लिए विधाता की ओर से प्रदान रिज़क अर्थात गेहूँ-भोजन का सेवन करना मनुष्य के लिए ज़रूरी है, लेकिन रसना-स्वाद अधीन रसों-कसों में खचित होना या विकारों में खचित होकर क्षीण हुई शारीरिक-शक्ति को पूरा करने के लिए जीव-जन्तुओं की

जीवन सत्ता पर छापा मारना पाप-कर्म है तथा इससे जीवन गिरावट की ओर जाता है।

भोजन तथा सूतक

माँसाहारी हठ धर्मियों की तरह भारत के ब्राह्मणों ने सूतक-पातक का सिद्धान्त देकर भोली-भाली जनता को उलझाने का प्रयास किया है। श्री गुरु नानक देव जी ने आसा की वार के १८वें श्लोक में इस भांति समाधान कर सही मार्ग प्रदान किया। श्लोक इस प्रकार है :

सलोकु मः १ ॥
जेकरि सूतकु मंनीऐ सभ तै सूतकु होइ ॥
गोहे अतै लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ ॥
जेते दाणे अंन के जीआ बाझु न कोइ ॥
पहिला पाणी जीउ है जितु हरिआ सभु कोइ ॥
सूतकु किउकरि रखीऐ सूतकु पवै रसोइ ॥
नानक़ सूतकु एव न उतरै गिआनु उतारे धोइ ॥१॥
मः १॥
मन का सूतकु लोभु है जिहवा सूतकु कूड़ु ॥
अखी सूतकु वेखणा पर त्रिअ पर धन रूपु ॥
कंनी सूतकु कंनि पै लाइतबारी खाहि ॥
नानक हंसा आदमी बधे जम पुरि जाहि ॥२॥
मः १॥
सभो सूतकु भरमु है दूजै लगै जाइ ॥
जंमणु मरणा हुकमु है भाणै आवै जाइ ॥
ख़ाणा पीणा पवित्रु है दितोनु रिजकु संबाहि ॥
नानक जिन्ही गुरमुखि बुझिआ तिन्हा सूतकु नाहि ॥३॥

(पन्ना ४७२-७३)

उपरोक्त श्लोक की पहली चार पंक्तियों में ब्राह्मण द्वारा प्रचारित की गई सूतक की थीऊरी का वर्णन है। फिर सिद्धान्तिक नुकता उठाया है कि यदि सूतक की इस थीऊरी को मान लें तो समस्त जीव गेहूँ-भोजन करने से पाप तथा अपवित्रता के दोषी बन जाते हैं। पांचवीं पंक्ति में यह प्रश्न किया है कि इस सूतक से बचाव कैसे संभव हो सकता है ? अगली पंक्ति में उत्तर है कि सूतक से छुटकारा केवल ज्ञान द्वारा हो सकता है।

श्लोक के दूसरे अंक में मनुष्य को चिपके सूतक का सही स्वरूप दर्शाया गया है कि मन के लिए लोभ सूतक है, जुबान के लिए झूठ बोलना, आँखों के लिए पराया रूप देखना तथा कानों के लिए पराई निंदा चुग़ली सुननी सूतक है, तथा इस प्रकार के सूतक में ग्रसा हुआ व्यक्ति जम की फाही में फँसता है।

श्लोक की अन्तिम पंक्तियों में तत्व-सार देते हुए आदेश किया है कि ब्राह्मण द्वारा प्रचारा गया समूचा सूतक-सिद्धान्त भ्रम-जाल है तथा यह द्वैत-मार्ग है। आना, जाना, जन्म, मरन सब प्रभु-हुक्म में है, गेहूँ-दानों से बना भोजन पवित्र पकवान है। यह भोजन मनुष्य के लिए उसके रचनहार राज़क-रहीम प्रभु ने बनाया है तथा इसका सेवन करने से मनुष्य पर कोई दोष नहीं आता। गुरुवाणी द्वारा दी गई गेहूँ-भोजन करने की आज्ञा को माँस-सेवन की खुल्ली छुट्टी समझना गुरुवाणी के उद्देश्य की सरासर उल्लंघना है।

जीवन-निर्वाह के लिए भक्त-जनों ने जो सातविक ख़ुराक अपने प्रभु से माँगी, वह गुरुवाणी में अंकित है :

भूखे भगति न कीजै ॥ यह माला अपनी लीजै ॥
हउ मांगउ संतन रेना ॥ मै नाही किसी का देना ॥१॥
माधो कैसी बनै तुम संगे ॥
आपि न देहु त लेवउ मंगे ॥रहाउ॥
दुइ सेर मांगउ चूना ॥ पाउ घीउ संगि लूना ॥
अध सेरु मांगउ दाले ॥ मो कउ दोनउ वखत जिवाले ॥२॥
खाट मांगउ चउपाई ॥ सिरहाना अवर तुलाई ॥
ऊपर कउ मांगउ खींधा ॥ तेरी भगति करै जनु थींधा ॥३॥
मै नाही कीता लबो ॥ इकु नाउ तेरा मै फबो ॥
कहि कबीर मनु मानिआ ॥
मनु मानिआ तउ हरि जानिआ ॥४॥११॥

(सोरठि कबीर जी, पन्ना ६५६)

गोपाल तेरा आरता ॥
जो जन तुमरी भगति करंते तिन के काज सवारता ॥१॥ रहाउ ॥
दालि सीधा मागउ घीउ ॥ हमरा खुसी करै नित जीउ ॥
पन्हीआ छादनु नीका ॥ अनाजु मगउ सत सी का ॥१॥
गऊ भैस मगउ लावेरी ॥ इक ताजनि तुरी चंगेरी ॥
घर की गीहनि चंगी ॥ जनु धंना लेवै मंगी ॥२॥४॥

(धनासरी धंना जी, पन्ना ६९५)

गुरुवाणी की उपरोक्त उदाहरणों की रोशनी में किसी शक्क की संभावना नहीं रह जाती कि भोजन के लिए मनुष्य द्वारा गेहूँ का सेवन करना कदाचित् पाप-कर्म नहीं, बल्कि ऐसा करना मनुष्य का परम धर्म है।

गेहूँ-भोजन तथा माँस-भोजन दोनों में बड़ा अन्तर है तथा इन्हें एक ही पलड़े में तोलना दयानतदारी नहीं। इस सूक्षम अन्तर को दर्शाने के लिए दो उदाहरण पेश हैं :

(क) केशों की पालना— केशों की बेअदबी (कटाई)

सिक्ख धर्म में केशों की बहुत महत्ता है। केश गुरु की मोहर हैं। इसलिए गुरु की मोहर जानकर केशों का सत्कार करना, अथवा केशों की पालना तथा सेवा-संभाल करने का हुक्म है। इस मनोरथ के लिए 'रहितनामों' में प्रत्येक सिक्ख को सुबह-सांय दोनों समय केशों को कंघा करने का आदेश है :

कंघा दोनो वकत कर पाग चुने कर बाधई ॥
दातन नीत करे ना दुख पाए लाल जी ॥

(रहितनामा भाई नन्द लाल जी)

केशों को कंघा करने से प्राकृतिक तौर पर कुछ मुर्दा हो चुके केश शीश से अलग होकर कंघे में आ जाते हैं या झड़ जाते हैं। दूसरी ओर कुछ लोग फ़ैशन-अधीन कैंची, उस्तरे, ब्लेड से केश उतरवाते हैं। निरसंदेह दोनों हालतों में केश उतरते हैं, लेकिन केशों में कंघा करना केशों की पालना तथा संभाल में शामिल है तथा सराहनीय कर्म है, और केशों पर उस्तरा या कैंची आदि चलाना पतित-कर्म है, इसकी सख़्त मनाही है। उपरोक्त दोनों प्रकार के कर्मों का अन्तर स्पष्ट है—एक रहित (रीति) का अंग है और हुक्मन (पालन) करना आवश्यक है तथा दूसरा बज्जर कुरहित (कुरीति) है तथा इसकी मनाही है चाहे, केशों का उतरना दोनों ही क्रियायों में होता है।

(ख) निज नारी का संग— पर-नारी का संग

सिक्ख धर्म में गृहस्थ जीवन की प्रधानता है। हमारे गुरु साहिबान गृहस्थी हुए हैं।

गुरु हरिगोबिन्द साहिब जी के इतिहास में अंकित पावन बचनों अनुसार 'औरत ईमान है'। परन्तु गुरसिक्ख गृहस्थी के लिए गुरमति का उपदेश है :

एका नारी जती होइ पर नारी धी भैण वखाणै ।।

(भाई गुरदास जी, वार ६, पउड़ी ८)

पर-नारी का संग सिक्ख धर्म में पतित-कर्म माना गया है, तथा इसकी मनाही है :

निज नारी के संग नेहु तुम नित बढैयहु ।।
पर नारी की सेज भूलि सुपने हूं न जैयहु ।।५१।। *(पातिशाही १०)*

पर त्रिअ रावणि जाहि सेई ता लाजीअहि ।।८।।

(फुनहे म: ५, पन्ना १३६२)

हउ तिसु घोलि घुमाइआ पर नारी दे नेड़ि न जावै ।।

(भाई गुरदास जी, वार १२, पउड़ी ४)

पर बेटी को बेटी जानै ।। पर इसत्री को मात बखानै ।।
अपनी इसत्री सों रत होई ।। रहतवान गुरु का सिक्ख सोई ।।

(रहितनामा भाई देसा सिंह जी)

यदि कोई बिगड़ा तिगड़ा पर-नारी-भोगी विकारी मनुष्य अपने विकार को छिपाने हेतु या ठीक सिद्ध करने के लिए यह हुज्जत करे कि गृहस्थी भी भोगी है तथा पर-नारी-संगी भी भोगी है तो इस प्रकार दोनों में कोई अन्तर नहीं तो गुरुवाणी का डंडा पटाक उसके सिर पर लगता है .

गुपतु करता संगि सो प्रभु डहकावए मनुखाइ ।।
बिसारि हरि जीउ बिखै भोगहि तपत थंम गलि लाइ ।।१।।
रे नर काइ पर ग्रिहि जाइ ।।
कुचल कठोर कामि गरधभ तुम नही सुनिओ धरम राइ ।।१।। रहाउ।।

(मारू म: ५, पन्ना १००१)

जैसा संगु बिसीअर सिउ है रे तैसो ही इहु पर ग्रिहु ।।

(आसा म: ५, पन्ना ४०३)

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि गृहस्थ-प्रवेश संसार की वृधि हेतु प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है, पुण्य कर्म है, गुरमति अनुसार इसका विधान है, लेकिन इसके उलट पर-नारी का संग मानव समाज के पतन का एक मुख्य कारण है, पाप है तथा गुरमति अनुसार इसका निषेध है, चाहे भोग क्रिया दोनों हालतों में मौजूद है।

इसलिए जिस प्रकार का अन्तर कंघा करते हुए केशों के उतरने में तथा कैंची-उस्तरे से उतारने में है, तथा जो अन्तर निज-नारी के संग तथा पर-नारी

के संग में है, वैसा ही अन्तर गेहूँ-भोजन तथा माँस-भोजन में है। इनमें से एक पुण्य कर्म है तथा दूसरा विकार। गेहूँ-भोजन तथा माँस-भोजन में अन्तर दर्शाने के लिए कुछ ठोस दलीलें दी गई हैं, लेकिन हठ-धर्मी वाला स्वभाव किसी दलील को स्वीकार नहीं करता, चाहे कितनी ही निग्गर तथा अनुकूल हो। विवेक बुद्धि से विचार करने पर बात स्पष्ट हो जाती है।

ऊपर इस पक्ष को पेश करने का प्रयास किया गया है कि गेहूँ-भोजन तथा माँस-भोजन दोनों में अन्तर है तथा दोनों को एक ही पलड़े में तोलना अन्याय है। परन्तु ठोस तथा अनुकूल दलीलें देने के बावजूद गुरुवाणी के अन्तरीव निर्णय से ही तसल्ली हो सकती है।

गुरुवाणी में जहां गेहूँ-भोजन का विधान मिलता है, वहां माँस-भोजन का स्पष्ट निषेध मिलता है। जब दो विरोधी पदार्थों का एक ही स्थान पर वर्णन कर एक का विधान तथा दूसरे का निषेध किया जाए तो यह निर्णय नहीं तो और क्या हो सकता है ?

गुरुवाणी में स्पष्ट निर्णय है। यदि कोई मानने से इन्कारी है तो उसकी इच्छा। गुरुवाणी का निर्णय नीचे अंकित कर इस विचार को समाप्त किया जाता है :

कबीर खूबु खाना खीचरी जा महि अंम्रितु लोनु ॥
हेरा रोटी कारने गला कटावै कउनु ॥१८८॥
[हेरा-माँस] *(सलोक कबीर जी, पन्ना १३७४)*

दलील नं: ५

झटका खाने से मनुष्य में वीरता आती है ?

विचार

वीरता का माँस खाने या न खाने से कोई संबंध नहीं है। बहादुरी एक मानसिक जज़बा है, जो स्वै-कुर्बानी की उपज है। ज़ालिम मनुष्य अपने हित के लिए किसी को कुर्बान करता है, वीर पुरुष किसी आदर्श अधीन स्वै-कुर्बानी के लिए सदा तत्पर रहता है। ज़ालिम मुग़ल फ़ौज के विरुद्ध धर्म-युद्ध कर रही ख़ालसा फ़ौजों की बहादुरी का गौरव-मई वर्णन हम इतिहास में आम पढ़ते सुनते हैं कि एक तरफ़ मुग़लों की फ़ौज में पूरा पूरा बकरा खाने वाले गिलझे (गिद्ध) थे तथा दूसरी ओर गुरु की फ़ौज में मुठ्ठी मुठ्ठी भर चने खाकर उदर-पूर्ति करने वाले, शारीरिक तौर पर दुबले पतले

लेकिन मन के बलवान, वीर-बहादुर थे तथा इन वीरों ने गुरु के नाम-अमृत की शक्ति के सहारे मुग़ल फ़ौजों के छक्के छुड़ा दिये।

यदि बहादुरी का आधार माँस खाना होता तो ख़ालसा फ़ौजें मुग़ल फ़ौजों के मुकाबले में कदाचित् ठहर न सकतीं। पर बहादुरी का भेद आत्मा के बलवान होने में छिपा हुआ है और आत्मा बलवान होती है आत्म-बलिदान तथा आत्म-भाव न्योछावर करने से।

कमज़ोर पर तो हर कोई शेर होता है। बहादुरी का पता तो तब चलता है जब किसी बलवान से टक्कर हो। बेचारे तित्रों, बटेरों, मुर्गों तथा बकरों को मारकर बहादुरी का दावा करना हास्यास्पद बात है।

सच्चाई तो इसके उलट है। छोटे छोटे बेचारे जीव-जन्तुओं को मारकर खाने से मनुष्य की आत्मा निर्बल होती है तथा इस प्रकार उसमें कायरता प्रवेश करती है। जब झटकई पशु-पक्षियों को मारने हेतु पकड़ता है तो वह मौत के डर से सहम जाते हैं तथा अपनी जान बचाने के लिए उसके हाथों से निकल निकल जाते हैं। मरते समय उनके अन्दर हीनता तथा बेबसी के भाव हावी होते हैं। इसलिए ऐसी हीनता भरी मानसिक अवस्था में मरे जानवरों का माँस खाकर मनुष्य में बहादुरी कैसे प्रवेश कर सकती है ? प्रसिद्ध तथा जानी-मानी कहावत है, 'जैसा अन्न वैसा मन'। डरपोक तथा हीन जानवरों का माँस खाकर मनुष्य में हीनता ही प्रवेश करेगी।

गुरमति के झरोखे द्वारा देखने से वीरता का सही ज्ञान होता है। गुरुवाणी अनुसार असली योद्धा वह है जो ईश्वर के प्रेम-रंग में रंगा हुआ हो तथा प्रेम-रंग के कारण उसमें से मौत का भय निकल चुका हो।

जा कउ हरि रंगु लागो इसु जुग महि सो कहीअत है सूरा ॥

(धनासरी म: ५, पन्ना ६७९)

इस पद की और व्याख्या करते हुए गुरुवाणी में असली शूरवीरों तथा नकली शूरवीरों के लक्षण भी दर्शाये गए हैं ताकि किसी को कोई शंका न रहे :

सूरे एहि न आखीअहि अहंकारि मरहि दुखु पावहि ॥
अंधे आपु न पछाणनी दूजै पचि जावहि ॥
अति करोध सिउ लूझदे अगै पिछै दुखु पावहि ॥
हरि जीउ अहंकारु न भावई वेद कूकि सुणावहि ॥
अहंकारि मुए से विगती गए मरि जनमहि फिरि आवहि ॥९॥

(मारू वार म: ३, पन्ना १०८९)

सूरमे की परख यह है कि वह दीन-दुखियों की ख़ातिर अपनी जान की बाज़ी तक लगा देता है :

सूरा सो पहिचानीऐ जु लरै दीन के हेत ॥

(सलोक कबीर जी, पन्ना ११०५)

लेकिन इसके उलट जो मनुष्य दीनों, मज़लूमों, अर्थात बेज़ुबान तथा मासूम पशु-पक्षियों पर ज़ोर-ज़ुल्म कर अपनी रसना के स्वाद हित, या विकारों में क्षीण हुई शक्ति को वापस बहाल करने के लिए उनका ख़ून पीता है, उसकी सूर्मगति की डींग, बुद्धि का दीवालीय-पन नहीं तो और क्या है ?

दलील नं: ६

माँस एक ताकतवर भोजन है, इससे शरीर मज़बूत और स्वस्थ होता है ।

विचार

जहां तक माँस के भोजनात्मिक महत्व (Food Value) का संबंध है, यह समस्या (मसला) हिकमत (तत्त्व-ज्ञान) से संबंधित है। इसके बारे में डाक्टरों के भिन्न-भिन्न विचार हैं। कई डाक्टरों का विचार है कि माँस में ए-कलास प्रोटीन होते हैं, इसलिए इसका सेवन करने से शरीर को अधिक ताकत मिलती है। दूसरी ओर कई डाक्टरों का विचार है कि माँस मनुष्य के लिए अप्राकृतिक भोजन है तथा इसके खाने से मनुष्य के मसूड़ों, पाचन-शक्ति तथा रक्त-चाप (Blood Pressure) पर भारी असर पड़ता है। संपूर्ण संसार के उच्च कोटि के डाक्टरों में से कुछ के विचार उदाहरणार्थ निम्न दिये जाते हैं :

(क) "माँस अप्राकृतिक भोजन है। इसके खाने से भगंदर, तपेदिक आदि कई बीमारियाँ पैदा होती हैं तथा आजकल संसार की ९९ प्रतिशत बीमारियों का कारण माँस खाना है।"

(डा. जोज़फ़ ओलिड फ़ील्ड)

(ख) "माँस खाने से सिरदर्द, कब्ज़, दिल की बीमारी, जीवन-शक्ति में कमी तथा और बहुत सी बीमारियाँ पैदा होती हैं।"

(डा. डबलयू.एच.एल. चेन)

(ग) **भगंदर के विशेषज्ञ डा. वैल्ल** ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि हर वर्ष

संसार में पच्चीस करोड़ पच्चास लाख तथा केवल इंगलैंड एवं वेलज़ में ही तीस हज़ार मनुष्य इस बीमारी से मरते हैं, जिसका मुख्य कारण माँस खाना है।

परन्तु डाक्टरों के विचार आए दिन बदलते रहते हैं। वैसे नित्य के जीवन में हम देख रहे हैं कि न तो सभी माँस खाने वाले व्यक्ति स्वस्थ हैं तथा न ही सभी माँस न खाने वाले कमज़ोर हैं। बल्कि सच्चाई तो यह है कि माँस खाने वाले व्यक्ति देखने में चाहे मोटे ताज़े नज़र आते हों परन्तु उनके मुकाबले में माँस न खाने वालों में कठिनाई झेलने का धैर्य तथा शक्ति अधिक होती है।

शारीरिक आरोग्यता के लिए डाक्टरों के विचार को मानना तथा अपनाना किसी सीमा तक ठीक है। लेकिन केवल मिट्टी की यह कुटिया ही शरीर नहीं। शरीर से तात्पर्य है, "यह पंच-भूतक कुटिया, समेत इसमें बसती आत्मा के"। यह आत्मा इस शरीर का सर्वोत्तम अंश है। इसके बिना शरीर की हस्ती ही कायम नहीं रह सकती। इसलिए जहां शरीर को रिष्ट-पुष्ट रखने की आवश्यक्ता है, वहां आत्मा को बलवान रखना मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य है। मनुष्य की आदर्शिक ख़ुराक वही कही जा सकती है जिस द्वारा मानव-शरीर तथा इस शरीर-घर का मालिक 'आत्मा' बलवान हो।

डाक्टरों की पढ़ाई तथा डाक्टरी ज्ञान पंच-भूतक शरीर-कुटिया तक ही सीमित होता है। उनको आत्मा के बारे में कोई ज्ञान नहीं होता। इसलिए यह कुदरती बात है कि उन द्वारा सुझाया गया भोजन पंच-भूतक शरीर की वृद्धि तक ही सीमित होता है। माँस-भोजन के लिए जीव-हत्या का होना आवश्य है तथा जीव-हत्या के कारण 'मानव-आत्मा' दया के दैवी-गुण से वंचित होकर निर्बल हो जाता है। निर्बल आत्मा वाला शरीर रिष्ट-पुष्ट होने के बावजूद व्यर्थ तथा नाकारा ही साबित होता है।

माँस के भिन्न भिन्न पक्षों के संबंध में गुरुवाणी के निर्णयों से ही मार्ग-दर्शन करना बनता है। गुरुवाणी का उपदेश है :

हकु पराइआ नानका उसु सूअर उसु गाइ ॥
गुरु पीरु हामा ता भरे जा मुरदारु न खाइ ॥

(माझ की वार म: १, पन्ना १४१)

'हकु पराइआ' से अभिप्राय 'पराई मलकीयत' से है तथा पराई मलकीयत को जबर-ज़ोर से हड़प करना पाप-कर्म है। रिश्वत तथा लूटमार के धन से प्राप्त किये पदार्थ पंच-भूतक शरीर के लिए चाहे लाभदायक हों, लेकिन गुरसिक्खों के लिए 'पराया हक्क' विवर्जित है।

भाई लालो की कोधरे की रोटी से मल्लिक भागो का पकवान निःसंदेह अधिक स्वादिष्ट तथा पुष्टि-कारक था लेकिन धर्म के मार्ग-दर्शक गुरु बाबे ने सुकृति-कारक कोधरे को ही अपनाया तथा माल्-पूड़ों के पकवानों का तिरस्कार किया। फिर दोनों किस्मों के पकवानों को अलग-अलग हाथों में पकड़कर एक में से दूध तथा दूसरे में से लहू निकालने का अद्भुत कौतक प्रत्यक्ष प्रदर्शित किया। कैसा अजीब खेल है कि आज गुरु-नानक-नाम-लेवा दूध छोड़कर ख़ून पीने का रास्ता ग्रहण कर रहे हैं।

लूटमार करनी 'पराया हक्क' मारना समझा जाता है। यदि लूटमार करनी ख़ून पीने समान तथा जुर्म है तो रसना के चसके या ताकत बढ़ाने के लालच के कारण जानवरों के जीने के हक्क पर छापा मारना कहां का सही व्यवहार है ? पराया हक्क हड़पकर तथा मुर्दार खाकर गुरु पीर द्वारा हामी भरे जाने की आशा रखनी अपने आप से एक बड़ा धोखा है ?

गुरु के सिक्खों के लिए जीवन-मार्ग कुछ और है :

खसमु पछानि तरस करि जीअ महि मारि मणी करि फीकी ॥

(आसा कबीर जी, पन्ना ४८०)

किरति विरति करि धरम दी खटि खवालणु कारि करेही ॥

(भाई गुरदास जी, वार १, पउड़ी ३)

घालि खाइ किछु हथहु देइ ॥
नानक राहु पछाणहि सेइ ॥

(वार सारंग की, मः १, पन्ना १२४५)

•